

TEXT PROBLEM WITHIN THE BOOK ONLY

text cut with in
the book only

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182702

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. ^H 81.6 Accession No. G H 1924

Author V31Va

Title अहि स्तुति २८
अस्मि

This book should be returned on or before the date last marked below.

प्रकाशक:—

मारवाडी नवयुवक मण्डल

मारवाडी बाजार,
हैदराबाद (दक्षिण).

मुद्रक:—

श्री श्यामसुन्दर मुद्रणालय

अफजलगञ्ज,
हैदराबाद (दक्षिण).

स्नेहोत्सर्ग

प्रेम एव परो धर्मः

मेरे नयन की उत्सव ! मेरे हृदय की कविता !

मेरे वृष्ण की रमेश्वरी राधा रानी ! मेरे समस्त जीवन की स्नेह ज्योत्स्ना ! मोक्षार्थ
सर्वस्व श्रीमती सुशीलादेवी शास्त्रिणी विद्यालङ्कृता विशारद काव्यतीर्थ चर्चदोगी —

की सेवा में :—

तुम्हारा स्नेह-स्मरण ही मेरा जीवन है । जागृति में ही नहीं सुषुप्ति में भी तुम्हारे
सपने मुझे आते हैं, त्रिस प्रकार—‘ सर्व देव नमस्कारः केशवं प्रति गच्छति ’ उसी प्रकार
मेरा प्रत्येक कार्य कलाप तुम्हारे ही प्रति है । ‘ वामन्ती ’ काव्य में तुम्हारे अनुभव के
मिसरे ही सर्वानुभव के गीत गाते में मैं समर्थ हो सका हूँ ।

“ नितिज पर अम्बोधि में है डूबता आकाश जैसे —

डूबता हूँ मैं तुम्हारे प्रेम में ही सजनि ! वैसे ” ।

अच्छा ! हृदय-नव-प्रीति ! काव्य कुशले शीले ।

अपना यह हृदय-हीरक आज तुम्हारे अमृतोज्ज्वल कुसुम-कोमल करों में ग़ादर समर्पित
कर अपने को कृत-कृत्य मानता हूँ । आशा है कि भाविक भक्त की यह कालातीत रस
भावना या आत्मा की आरजू तुम्हारे निकट समावृत होगी ? और तभी स्मरण के संगी
ध्यान के साथी स्नेह-योगी की प्रेम विरह के अमर करने की यह लालसा भी सफल होगी !

तुमको अपने में देखूँ —

तुम में देखूँ अपने को !

तुम में ही घुल मिल जाऊँ !

सच्चा कर लूँ सपने को ।

नित्य कल्पना के नयनों में -

मैंने तुम्हें निहारा ।

आज वही प्रत्यक्ष हुई तुम !

यह सेोभाग्य हमारा !!

तुम्हें देख कर भाव हृदय में

शब्दों में आ जाते,

मानो पाम पहुँचने को

वे भी व्याकुल दिखलाते ।

तुम्हें देख कर चढ़ा ऊपरी —

खिलने में करते हैं फूल ।

जिन से प्रथम तुम्हारी सेवा —

प्राप्त उन्हें हो है सुख मूल ।

पर मैं उन फूलों से पहिले —

प्राप्त तुम्हें प्रिय ! कर लूँगा ।

अपने ये मन-प्राण —

तुम्हें सुख-सोरभ से भर लूँगा ।

अपने शब्दों में —

आराधक चातक
शास्त्रिनिकेतन कवित्व-मंदिर,

तुम्हारे ही शब्दों में —

“ जीवन-धन, स्नेह ”

प्रेमोपहार

वासन्ती

एक हाथ में आशा जिसके
एक हाथ में शुभ आशीष;
जिस के दृग में स्वप्न -
मुझे ऐसा मानव दो हे जगदीश !!



रचयिता:—

श्री. कुँवर हरिश्चन्द्र देव वर्मा

“चातक” कविरत्न काव्यालङ्कार.

अनुक्रमणिका

१ कितनी दूर सजन का घर है	१	३२ प्रथम दर्शन	४४
२ प्रिय-दर्शन	२	३३ हृदय के टुकड़े	४६
३ छविगान	३	३४ गीतिका	५३
४ कुछ मिलता नहीं पतारे	५	३५ न जाना मैं ने क्या है प्यास	५४
५ माँ	६	३६ चलो बसालें नूतन दुनियाँ	५५
६ उसपार	७	३७ दिवस से	५६
७ प्रवांछी	८	३८ इमशान से	५८
८ प्रयाण	९	३९ मोती के दाने	६०
९ द्वार	१०	४० जीवन गान	६१
१० हृदय	१२	४१ भिटने ही में जीवन देखा	६२
११ एगन्त	१३	४२ तुमने मुझे नहीं पहचाना	६४
१२ मौन	१४	४३ तुम और मैं	६५
१३ बालक	१५	४४ कुणाउ	६६
१४ अन्तर्नाद	१६	४५ गीत	६८
१५ टीस	१८	४६ सन्देह	६९
१६ कोई क्या गाये	२०	४७ तट	८६
१७ बालिका	२१	४८ कलकल	८७
१८ कोऽहं	२२	४९ नीराञ्जन	८८
१९ जीवन और मरण	२३	५० आंख मिचौनी	९४
२० कल्पना	२४	५१ चांदनी में	९५
२१ साधना के दो रूप	२५	५२ तुलसी और रत्ना	९६
२२ सिसकती दुनियाँ और माँ के तरुणोपे	२६	५३ प्रदीप की परितृप्ति	१०५
२३ चिन्तन	२७	५४ ईसा	१०६
२४ सिद्धार्थ	२८	५५ कविता का संसार	१०८
२५ गंत	३३	५६ प्रताप-प्रतिज्ञा	११०
२६ चित्रकार से	३४	५७ जयचन्द की आत्म-ग्लानि	१११
२७ क्या क्या जन्ती में बना कौन	३५	५८ कालिदास	११२
२८ पत्थर की पुष्पार	३६	५९ प्रियतम से	११३
२९ चित्र की चिन्ता	४१	६० स्वप्न में प्रत्यक्ष	११७
३० सन्तोष	४२	६१ निर्माण-रहस्य	१२०
३१ मिलन	४३		



दिल की दुनिया

सुनोरे ! मानुष भाई !
सवार उपरे मानुष सत्य,
ताहार उपर नाई ।

पर

एक दृष्टि !

—भक्त प्रवर चण्डीदास



“ कला ही जीवन, माथही जीवन स्वयं कला है ” ।

—महात्मा गान्धी ।

‘ Living is an art

But great art of attaining the true and the noble, so that the world may be richer for our presence, death may be proud to take us, and heaven rejoice to welcome us—this is neglected and ignored. ”

—Robert P. Downes.

“ जीवन एक कला है.....

परन्तु उच्च और श्रेष्ठ कला का कार्य हमें शिष्ट और सच्चा बनाना है, वह भी ऐसा कि जिस से विश्व हमारे अस्तित्व में विशेष सम्पन्न हो, यमराज हमें पाकर गर्व करें और स्वर्ग लोक को हमारे स्वागत में आनन्द का बोध हो । दुःख है कि ऐसी सच्ची कला ही को हम भूल गये हैं ! ”

—राबर्ट पी. डौनिस

सुप्रसिद्ध ग्रीक दार्शनिक अरस्तू ने कविता को जीवनावृत्ति Imitation of life कहा है, सुप्रतिष्ठित कवि और सत्समालोचक मेथ्यू आर्नल्ड ने भी कविता को जीवन की आलोचना Criticism of life माना है । वास्तव में कविता मानव जीवन का सुन्दर प्रतिबिम्ब तो है ही — न कि केवल छन्द और वाक्यों का समूह ? प्रकृति के अणु परमाणु और मानव हृदय का सच्चा सौंदर्य-दृष्टा कवि ही तो है—और कवि स्वयं कविता है । महामति मिल्टन के शब्दों में “ पहिले जीवन को सच्ची कविता बना लेना चाहिये, खुद उसका जीवन रूपी छन्द सर्वोत्तम और सर्व श्रेष्ठ सुवर्णों द्वारा रचित होना चाहिये ” सारांश यह कि अधिक मानव होना, अधिक सफल कवि होना है, अक्षरों की अपेक्षा जीवन की कविता रचना कहीं अधिक श्रेयस्करो है । हमारा जीवन स्वयं एक मूर्तिमान काव्य होना चाहिये — जिस से सत्यं शिवं सुन्दरम् का मार्मिक सन्देश अनुक्षण प्रकट होता रहे, सभी कला का साफल्य

है। और तभी जीवन-रस के सत्य लोक में व वि का जागरण सफल है। प्रभु सेोँदर्याभि-सुख हैं, सेोँदर्य श्वेत नहीं है, श्याम भी नहीं है, सेोँदर्य जो है सेोँदर्य ही है—तभी हम उस प्रभु के महा मानव बालक सेोँदर्य के परम पुजारी हैं, प्रकारान्तर से सेोँदर्य की पूजा प्रभु की पूजा है। सेोँदर्य चिरस्थायी है, निरवधि है, विश्व के विराट् क्रीडन ओर सभी योग क्षेम में सेोँदर्य की प्रेरणा है। जीवन में अनन्त सेोँदर्य है, इसी लिये तो मेंने कहा है कि उस सेोँदर्य का दृष्टा कवि स्वयं एक कविता है। उसके जीवन-पुस्तक के पन्ने पलटने पर कहीं अरमानों से लड़ी मन्द स्मिति ओर कहीं अश्रु विगलित वेदना के दर्शन होते हैं, कहीं खिली कली ओर चाँदनी-सी उजली स्वर्गीय सुषमा की सजीव ईर्ष्या-सी किसी कोमलांगी के नूपुरों की रुनझुन है, तो कहीं उजड़े जीवन का अभिशाप लिए दरिद्रता के जीवित चित्रों का कलण कन्दन है, कहीं चन्द्र की सुधा-भ्रवलित रजतिमा है, ओर कहीं कठिन काव्य-हीन जीवन लिये तापकरी दुस्सह धूप है।

न जाने कितनी पूजा की धूप जला कर कितनी कामना की बंशी बजा कर ओर कितने वासन्ती फूलों के स्तवक चढ़ाकर कवि अपने अन्तर्हृत् के स्नेह स्वर्ग में कविता का आह्वान करता है। तब कहीं कवि साधक के हृदय में कविता एक मृदु स्वप्न की तरह प्रवेश करती है, ओर फिर उसकी वाणी से अनुराग में डूबे हुए शब्दों का एक समूह मचल-मचल उठता है। तब कवि—

अपनी कविता प्रेयसी के लिये भवभूति के राम की तरह कह उठता है “ त्वं जीवितम् त्वमसि मे हृदयं द्वितीयम् ” तुम मेरा जीवन हो ? ओर तुम मेरा दूसरा हृदय हो। कवि स्वप्न दृष्टा स्वप्नो में बहने वाला प्राणी है, कवि के स्वप्न कभी न कभी अवश्य ही सत्य के धरातल का स्पर्श करते होंगे ? क्योंकि जो जीवन के प्रत्येक फल में हृदय के प्रत्येक पुलक कम्पन में—यहाँ तक कि वाणी में भी है, उस भाव का अभाव हो ही कैसे सकता है ? कवि के लिए ही तो वसन्तश्री नव किशलयों से तरराजि का शृंगार करती है, निर्विरिणी सृष्टि का संगीत गाती है, तारक महागून्य में स्वर्गीय कविता लिखते हैं, कनक किरीटिनी ऊषा गगन गवाक्ष से झाँक उठती है, प्राची का महापृष्ठ कुंकुम से लिख जाता है, ओर कवि यह सब देख कर एक अनिर्वचनीय आनन्द में डूब जाता है—अपने को खो देता है ओर कवि बायरन Byron की तरह कह उठता है—

“ I live not in myself but I become portion of that around me; ”

*

*

*

Are not the mountains, waves, and the skies
a part of me and of my soul, as I of them ?

—Child Harold's pilgrimage.

“ मैं केवल अपने तक ही सीमित नहीं रहा, मैं तो मेरे चारों ओर जो कुछ है, उसी का एक भाग हो गया हूँ । क्या यह पहाड़, लहरें, ओर आस्मान, मेरी आत्मा के एक भाग नहीं हैं, जैसे कि मैं उनका एक भाग हूँ ? ” दृष्टि समष्टि में घुल मिल गया ‘ एको हं बहु स्याम् ’ अब तो ‘ Smile and world smiles with you ’ हँसो दुनिया तुम्हारे साथ हँसने लगेगी । “ हयातो मोत भी अदना-सी इक कड़ी मेरी—
अजल से लेके अबद तक वह सिलसिला हूँ मैं,
जीवन मरण उसके लिये एक साधारण सी बात है ।

उसका देश प्रेम का देश है, जहाँ न तिरस्कार है, न अवहेला, ओर न जहाँ प्रेम की याचना ही निष्फल होती है, न किसी के चरणों में स्नेह-पुष्प बिखेरने में कोई बाधा ही होती है । ऐसी स्थिति में कवि उस विराट् सत्य को पहिचान लेता है, फिर तो :—

Thow Canst not stir a flower
Without troubling of a star

वृक्ष के एक फूल तोड़ने का झटका सारे तारामण्डल को कम्पायमान कर देता है, उस समय उस कवि की दशा ठीक उस प्रेमी की हो जाती है जिसके लिए प्रसिद्ध है:—

“ मुहब्बत में इक ऐसा वक़्त भी आता है इन्साँ पर—
सितारों की चमक से चोट लगती है रंगे जाँ पर । ”

—सीमाव अकबराबादी

तब उसके पास जड़ नाम का कोई पदार्थ नहीं रह जाता—

वर्द्धस्वर्ध ने उम्मी स्थिति को लक्ष्य कर लिखा है:—

“ My faith is that every flower
Enjoys the air it breathes ”

“ The meanest flower that blows
Can give thoughts that lie often too
deep for tears ”

“ मेरा विश्वास है कि प्रत्येक पुष्प जिस वायु से उच्छ्वसित हो रहा है, उससे वह आलङ्घित भी हो रहा है ” ।

“ साधारण से साधारण विकसित पुष्प इतने गहरे भावों की सृष्टि करते हैं कि जो अश्रुओं के द्वारा भी प्रदर्शित नहीं हो सकते ” । जर्मन कवि गेटे ने भी कहा है कि “ मुहब्बत ओर दर्द का भाव विश्व की प्रत्येक वस्तु में पाया जाता है ” कवि को फिर अखिल सृष्टि काव्य-मय प्रतीत होती है । किसी भी भौगोलिक मंड में वह नहीं बँधता, उसके सभी ओर वह सभी का हो जाता है । फिर कविता उसकी मानसिक भूख ही शान्त नहीं करती उसका यत्सर्वस्व बन जाती है ।

**कान्ह भये प्रान मय कि प्रान भये कान्ह मय-
हिय मैं न जानि परै कान हैं कि प्रान हैं ?**

कवि कविता में फिर कोई भेद नहीं रहजाता । तभी तो मैं कविता को नई पुगानी किसी भी परिभाषा में बाँधना पसन्द नहीं करता । कविता तो पावस-निर्झर-सी सर्वत्र शाश्वतिक प्रवाहमयी है, वह ब्रह्म की तरह कठोपनिषद् के शब्दों में “ अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो ” पुराने होकर भी नित्य नवीन है, । छन्दोबद्ध होकर भी निर्बन्ध है। कविता का रस-गोत्र सदा अमर है ।

**“कविता है छवि-मुग्ध नयन का-
रुक जाना, झुक जाना ”**

यहीं तक नहीं “ कविता है आंखों के आगे-
बिखरा दाना-दाना ”
मचल उछल भर रात
अटपटा ग्रामीणों का गाना ’ ।

सभी कुछ तो कविता है “ पश्य ? देवस्य वै काव्यं
न ममार न जीर्यति ”

इस भगवान के काव्य को देखनेवाला अमृतत्व प्राप्त करता है । यह विस्तृत विश्व ही भगवान का अण्तिम अमरणाशील सोन्दर्य सम्पन्न महा काव्य है । क्षुद्राति क्षुद्र ओर विराट् से विराट् सभी काव्य से ओतप्रोत है । गुजराती के कवि-श्रेष्ठ नान्हालालजी ने लिखा है:- “ प्रकृति के पट पर तेज, छाया के रंग भर कर ब्रह्माण्ड का महा काव्य पर ब्रह्म-भूति भक्षकों से लिखा गया है ” कवि ही उसे पढ़ता है ।

कुछ लोगों का विचार है कि “ सोन्दर्य आत्मेर छाया-सोन्दर्योपासना आत्मों पासना है । वे कीटस Keats की तरह

**“ Beauty is truth, and truth is beauty that is
all ye know on earth and all ye need to know ”**

सोन्दर्य ही सत्य है, ओर सत्य ही सोन्दर्य है, यही मूल तत्त्व तुम्हें ज्ञातव्य है, ओर इसी के जानने की तुम्हें आवश्यकता है ” उल्लिखित विचारों के हैं, परन्तु उन्हें । भूल जाना चाहिये कि सोन्दर्य की भाँति विषाद में भी एक प्रकार का अपूर्वानन्द है । विप्रलम्भ में परम रस की यमुना बहती है । तभी तो शेली ने “ हमारे मधुरतम गीत वही हैं जिनमें हमारे चरम विषाद के भावों की अभिव्यक्ति होती है ”-

“ Our sweetest songs are those

that tell of saddest thoughts ” लिखा है । महाकवि भवभूति

भी वही कहा ‘हैं’ एको रसः कलम एव निमित्त भेदात् ”.....अथवा

“ अपि यावा रोदित्यपि दलति बज्रस्य हृदयम् ” अर्थात्—रस एक ही है, ओर बढ़ करण है जो निमित्त भेद से भिन्न २ रूपों में व्यक्त होता है ”

“ पत्थर भी रोने लगते हैं ” ओर बज्र हृदय भी टुक टुक हो जाता है । करुणात्मक Pathos साहित्य में भी आनन्द की कमी नहीं है । जिन आदिकवि आत्मजित् महर्षि वाल्मीकि के हृदय में

“ बालेन्द्र गोपान्तरचित्रितेन
विभाति भूमिर्नवशाद्वलेन
गात्रानुपृक्तेन शुक-प्रभेण
नारीव लाक्षोक्षितकम्बलेन ।

“ छोटी २ वीरबधूटियों से मध्य २ में युक्त नई हरिथाली से भूमि उस स्त्री की तरह शोभावाली है—जिम्मे तोते के रंग वाला बीच-बीच में लाल बिन्दुओंवाला अंगों के साथ लगा हुआ वस्त्र पहिन रक्खा है ” वर्षा-कालीन प्रकृति सुन्दरी की यह अभिनव शोभा अवतीर्ण हुई थी, उन्हीं के उसी हृदय में तमसा नदी के तीर पर बधिक द्वारा कौञ्च पक्षी के निधन पर सर्व प्रथम सहसा भारतीय साहित्य का यह प्रथम श्लोक भी उद्भूत हुआ था:—

“ मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः
यत्कौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ”

हे निषाद ! तुम बहुत दिन तक इस संसार में जीवित रह कर प्रतिष्ठा न पा सको, क्योंकि कौञ्च के जोड़े में से एक को जो काम मे मोहित था तुमने मार डाला है ”

अमृत कविता किसी एक रस, किसी एक भाव में आबद्ध नहीं है, भाषा उसके लिए

आवरण मात्र से कुछ अधिक नहीं है । अपने मनोभावों का यथार्थ रूप से व्यक्त करण ही कला Art के नाम से विहित है । अमूर्त को मूर्त, निहित को प्रकट, प्रच्छन्न को खोलना ही काव्य शिल्पी की कोशल तकनिक के क्षेत्र में सर्वतोमुखी विजय है । साधारण लोग कहेगे तुम्हिन कण, परन्तु मेरा काव्य कहेगा-

चाँदी की बूँदों में गल-गल
नभ टपक रहा था पृथ्वी पर ।

×

×

सुन्दरी ने उत्तरीय धारण किया — परन्तु कवि उसे यों कहता चाहेगा—

“ देख विश्व-सौंदर्य वस्त्र ने उसे छिपाया अपने में—
जिस से कहीं कुदृष्टि किसी की लगे न उस को सपने में ।

*

*

*

वही “ शुष्को वृक्षसिष्ठत्यग्रे ” और “ नीरम तरुहि बिलसति पुरतः ” बाली बात है। संस्कृत के सुषेण वैद्यक में पानी के लिए पानी माँगा है, देखिये कितने कवित्व-सुषम हंग से कविने पानी चाहा है, तद्विषयक एक श्लोक ही प्रसंगानुसार यहाँ उद्धृत करना हूँ—

“ स्वच्छं सज्जनचि तवल्लघुतरं दीनार्त्तवच्छीतलं -
पुत्रालिङ्गनवत्तयैव मधुरं बालस्य संजल्पवत् -
प्लोशीरलवङ्गचन्दनलसत्कपूरजातीफलं -
पाटल्योत्पलकेतकीसुरभितं पानीयमानीयतम् ”

“ सज्जन मनुष्य के चित्त-या निर्मल, दीन मनुष्य के विलाप-या अत्यन्त हलका, पुत्र को गोद में लेने-सा शीतल, बालक के बोलने-सा मधुर, इलायची, खस, लोंग, चन्दन, जायफल, पाटल, कमल, केतकी, इन से सुगन्धित पानी लाओ ! ” ।

*

*

*

झूठी कविता एक रंग रस अथवा आत्माहीन केवल शुष्कता का ढेर मात्र है। सच्चे कवि को जीवन का दुःख आनन्द प्राप्त होता है। आत्मिक सुख के साथ सुयश की प्राप्ति भी होती है। सभी भाषाओं के साहित्य ने कवि की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। कवि सार्वकालिक चिरस्थिर महिमा से महीयान है। मुझे नहीं मालूम मेरा स्थान कहाँ पर है ? मेरी प्रथम रचना ‘ निवेद्य ’ में मेरा कल्पना-प्रवण हृदय खूब ही खुल खेला है, ‘ बासन्ती ’ में कल्पना का बहुत कुछ स्थान विचार ने ले लिया है।

*

*

*

मानव का मज्जागत धर्म ‘ प्रेम ’ है। प्रेम एक धारा एकमुखी नहीं, शतधारा सहस्रमुखी है। प्रेमिक हृदय की सृष्टि कर के स्वयं भगवान भी कृतार्थ हुये होंगे ! इनमें सन्देह नहीं। प्रेम में बेदना है, उस बेदना का स्वाद प्रेमिक हृदय को छोड़ कर अन्य जान ही कैसे सकते हैं !

मजा अंगूर का मैखवार से पूछ !

मेरा यह कवित्व वृत्तुसुम जिसकी प्रेमल छाया में विकसित हुआ है, जिसमें मेरे दिल में उठते हुये तूफानों की कुछ-कुछ पटा है — जिसमें अधिक ओर किसी को मैं अपनी कवित्व की दुनिया में नहीं जानना, जिसके लिए मेरे प्रत्येक अंग से समर्पण छलक रहा है—जिसे मुझे भिखाया है :—

“ प्रेम है निष्काम केवल —

अर्चना ही भ्येव अपना ”

वह एक विशाल हृदय है, उसने मुझे सत्य प्रेम की दीक्षा दी है, उसका हृदय मेरा अतल सहवर और सच्चा मित्र है। उसने मुझे बायरन के शब्दों में बताया है:—

There is a pleasure in the pathless woods
 There is a rapture on the lonely shore
 There is a society where none intrudes
 By the Sea, and music in its roar
 I love not man the less, but nature more.

“ पञ्जरहित अरण्यों में आनंद है, ओर सरिता सागर के विविक्त (एकान्त) किनारे पर भी महान आनंद है। समुद्र के समीप जहाँ संगीत का सृजन उसकी लहरियों की ध्वनि में होता है एक प्रकार की सोसायटी है—जिसमें कोई हस्तक्षेप करनेवाला नहीं है। मैं मानव को कम प्यार नहीं करता हूँ, परंतु प्रकृति को कुछ मनुष्य से अधिक ही प्यार करता हूँ ”। वासन्ती के पाठकों को पदे पदे मेरा प्रकृति प्रेम मिलेगा। और एक आर्य-संस्कृति के प्रेमी हृदय में प्रकृति प्रेम का होना कोई आश्चर्य की बात भी नहीं है। कारण—संसार की सर्वाधिक प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद में मधुमयी उषादेवी, मधुमय सोम, आदि प्रकृति-वर्णन का बाहुल्य है। :—

मधु बाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः

माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥ ६ ॥

मधुनक्तंमुतोषसो मधुमत्पार्थिव ॥ रजः

मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ ७ ॥

अर्थात् वायु मधु की वर्षा करता है, नदियों में मधु बहता है, सर्वोपधियाँ माधुर्य से युक्त हों, रात और उषा मधुर हों, पृथ्वी का रज मधु से युक्त हो। सब का जनक आकाश मधु-युक्त हो। कवित्वमय सौंदर्य की ऐसी मधु मधुर वर्णन अन्यत्र नितान्त दुर्लभ हैं। मानवता के इस प्राचीनतम ग्रंथ में उषा का स्तवन अनेक प्रकार से किया गया है।

विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे । ऋग्वेद १।४८।१०।

उसे सारे विश्व का प्राण और जीवन कहा गया है।

विश्वं जीवं चरसे वोध्यन्ती विश्वस्य

वाचमविदन्मायोः ऋ० १।६२।६।

वह उषा प्रत्येक प्राणी में गति भरती है, प्रत्येक प्रेमी की वाणी पहिचानती है।

“अभि पेशांति वपते नृत्तूरिवापोरुति वक्ष उख्य बर्जिहम्” वह उषा नर्तकी दमकते कटे हुये वस्त्रों को धारण करती है, और जिस प्रकार गाय अपने थन को अर्पण कर देती है वह भी अपने स्तनों को विवसन कर के आसदी होती है।

पुन पुनर्जायमाना पुराणी —

समानं वर्षमभि शुभमाना ।

श्वध्नीव कृत्नुर्विज अभिमाना

मर्तस्य देवी जरयन्त्यायुः ।

वह पुराणी है, सनातन किशोरी नित्य उसी चमकते वस्त्र को धारण कर पूर्वी आकाश के छोर पर आ खड़ी होती है— ओर नित्य ही मत्स्यों की आयु में एक दिन बटा देती है—उसी प्रकार जैसे श्वपच थोड़ा थोड़ा कर के पक्षी को काटता है। यहीं तक नहीं ईश स्तवन की भवनि प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ से प्रकट होती है।

“ यस्य मे हिमवन्तो महित्वायस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।

यस्य मे प्रदिशो बाहुः कस्मै देवाय हविषा विधेम । ऋ० २१।५।

जिस भगवान की महिमा को ये हिमालय आदि पर्वत ओर समुद्र नदियों के साथ कहते (गाने) हैं ओर जिस भगवान की ये सब दिशायां महिमा कहती हैं, हम सब उस सुख रूप परमात्मा के लिए स्तुति पूर्वक विशेष भक्ति प्रकट करें। अस्तु समुद्र मरिचा आदि अपने समवेत स्वर से पहिले की तरह आज भी गायन करते हैं, पर जीवन संघर्ष में पड़ा मानव जीवन के खुरखुरेपन में उस अनादि संगीत को सुन नहीं पाता। ओर इसके लिए वह माधुर्य की निखिल सृष्टि व्यर्थ ही मिट्ट होती है। वह तैत्तिरीय उपनिषद् के :—

“ रसो वै सः

रसं ह्येवायं लब्ध्वा नदी भवति ” उस रस स्वरूप के रस की प्राप्ति में ही जीवन आनंदित होता है। इस मर्म को हृदयंगम नहीं कर पाता है।

*

*

*

दूसरी बात है ‘नेत्रेभ्यः’ वाचे कवि ओर ‘इमः’ वाचनी ‘वाचे’ कवि के विषय में। नेत्रेभ्यः में कण्ठा की कृपा मेरे ऊपर कल्पना से अधिक न था। वाचनी में कण्ठा कुछ कल्पना से अधिक मिलेगी। इसका कारण स्यात् हृदय की चोट ही है, इधर में उत्तर गमचरित, अभिज्ञान शाकुन्तल ओर कवि प्रसाद जी आदि की कुछ कारुणिक रचनायां भी पढ़ता रहा हूँ। “ परिपाण्डुदुर्वलकपोलसुन्दरं

दधती विलोककवरीकमाननम्

करुणम्य मूर्तिरिव वा शरीरिणी

विरहव्यथेव वनमेति जानकी । —भवभूति

तमसा विरहिणी सीता का वर्णन करती हुई कहती है—पीले ओर दुर्बल कपोलों में सुन्दर ओर बिखरी हुई चेणी से युक्त मुख को धारण किये हुये जानकी मूर्तिमयी कण्ठा या सशरीरी विरहव्यथा-सी वन में आ रही है।

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो-

रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः

अयं कण्ठे बाहुः शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः

किमस्या न प्रेयो यदि पुनरसहो न विरहः

—भवभूति

यह सीता मेरे घर की लक्ष्मी और नेत्रों के लिए अमृत शलाका है । इस का स्पर्श शरीर के लिये चन्दन रस है । मेरे गले में पड़ी हुई इसकी यह भुजा शीतल और चिकनी मुक्ता-माला है । इसकी क्या वस्तु प्रिय नहीं है ? सभी हैं वेवल इसका विरह ही असह्य है ।

**उद्गीर्णदर्भकवला मृगी, परित्यक्तनर्तना मयूरी—
अपस्तुतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः—**

—कालिदास

प्रियम्बदा कहती है कि अकेली तुझी को शोक नहीं है-ज्यों २ तेरे विहा होने का समय निकट आता-तेरे विरह से वन में व्यथा-छाई जाती है । देख मृगियोंने घास चरना छोड़ दिया है, मोर नाचना भूल गये हैं और पत्ते तेरे विछोह की आँच से पीले होकर ऐसे गिरते हैं मानों लता आँसू टपका रही है ।

**“पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वसिक्तेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्
आदौ वः कुसुमप्रवृत्तिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्**

—कालिदास

कण्व कहते हैं— हे तपोवन के लता वृक्षों !

जिस शकुन्तला ने तुम्हारे बिना लीचे कभी जल भी नहीं पिया और न जिसने पुष्प पत्र के गहने पहिनने का चाव रहते हुये भी स्नेह वश तुम्हारे पुष्प पत्र ही तोड़े ; संदेव तुम्हारे मौरने के समय बड़ा आनंद माना, वही तुम्हारी शकुन्तला आज अपने पति-गृह जा रही है, तुम सभी उसे आज्ञा दो ?

**“वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः
अति निष्करुणस्य शुद्धशीला मम दीर्घं विरहव्रतं विभर्ति—**

अभिज्ञान शाकुन्तल के सप्तमाङ्क में स्वर्ग से लौटने समय हेमकूट पर्वत पर कश्यप के आश्रम में राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला को देखा—यह सम्प्रति मलिन वस्त्र धारण किये है, कठोर विरह व्रत के कारण इसका मुख सूख गया है, इसके मस्तक पर केवल एकही वेणी है । यह शुद्ध शील वाली शकुन्तला मुझ अति निष्ठुरका बहुत लम्बा विरहा-व्रत धारण किये हुये है ।

*

*

*

विनिमय प्राणों का यह कितना भय-संकुल व्यापार अरे ?

देना है जितना दे दे तू लेना कोई यह न करे ।

परिवर्तन की तुच्छ प्रतीक्षा पूरी कभी न हो सकती—

सन्ध्या रवि देकर पाती है इधर उधर उडुगण बिखरे ।

*

*

*

बन-वालाओं के निकुंज सब भरे वेणु के मधुस्वर से—
लौट चुके थे आने वाले, सुन पुकार अपने घर से ।
किन्तु न आया वह परदेशी युग छिप गया प्रतीक्षा में—
रजनी की मीगी पलकों से तुहिन विन्दु कण-कण बरसे ।

*

*

*

जिसके हृदय सदा समीप है—
वही दूर जाता है ।
और क्रोध होता उस पर ही—
जिससे कुछ नाता है ।

—प्रसाद

महलों पर कुटियों को बारो पकवानों पर दूध दही !
राजपथों पर कुञ्जें बारो मंचों पर गोल्फ़ेक मही !
सरदारों पर ग्वाल, और नागरियों पर ब्रजबालायें !
हौर-हार पर बार लाडिले वनमालों वन माकायें !
छीन्नी गी निधि नहीं किसी सौभागिनि पुण्य प्रमोदा की !
बाल बारना नहीं किसी पर गोद गरीब यशोदा की !!

—“भारतीय आत्मा”

*

*

*

उम निकुंज का बन् विहंगम या उस पथकी रेणु बन् !
उस मधुवन की धेनु बन् या उन अधरों की वेणु बन् !
मुझे नहीं अभिलाषा इसकी नृत्य बन् या गान बन् !
राधा की चंचल चितवन या मोहन की मुसकान बन् !
मुझे बनाना प्रभो ! प्रतिध्वनि उस निकुंज में रम जाऊँ—
जहां विरह-व्याकुल राधा को आंसू बरसाते पाऊँ—
जब सकम्प सुकुमार कण्ठ में निकले “हे प्रियतम आओ !
करूं समर्थन उम दुखिथा का मैं कहकर “आओ ! आओ ! !”

—‘मिलिन्द

*

*

*

सब कुछ लेलो पर छोड़ दो हमारे लिये—
मानस में पीर लोचनों में आँसुओं की धार” !

—स्व. कौशलेन्द्र.

काल-प्रवाह हमारा प्रेम स्मृति को न बहा सके, इसी से अपने इन करुणोद्गारों को छन्दों में बाँध रक्खा है। आयु भर के कृत्रिम प्रेम की अपेक्षा क्षण भर का सत्य प्रेम कहीं अधिक श्वस्कर है। मुझे गर्व है कि जीवन में मैंने भी उस सत्य प्यार के क्षण को नजदीक से देखा है और स्वर्गाधिक सान्निध्य-सुख को प्राप्त कर अपनी अपूर्णता को पूर्ण किया है। अन्त में—

“केनो वञ्चित होवो चरणो
आमि कतो आशा कोरे
बोसे आछि—
पाबो जीवने ना हय मरणे ।”

मे चरणों से कथो वाति होऊंगा ? मैं कितनी आशा लिये बैठा हुआ हूँ— जीवन में न पाऊंगा — तो मरने पर तो पाऊंगा ॥

*

*

*

श्री बनारसी दासजी चतुर्वेदी, संपादक ‘मधुकर’ श्रीहरिशंकरजी शर्मा
संपादक ‘आर्यमित्र’ श्रीसत्यदेवजी पाण्डेय, रायबहादुर श्री० श्रीनारायणजी
चतुर्वेदी, चिरजीव राजेन्द्र देव वर्मा एम० ए० यल० टी०, चि०बी. डी.
सिंह (बी. काम.) चि० शचीन्द्र कुमार, श्री० बद्रीविशालजी पित्ती
“विशारद”, श्री० लक्ष्मीलालजी पित्ती, रूपनारायणजी पाण्डेय, आचार्य
प. श्री दिवाकर चन्द्रजी, श्री शङ्कर वक्ससिंहजी, श्री इन्द्रनारायणजी गुर्द,
ठाकुर तिलकसिंहजी, रायबहादुर हेमचन्द्रजी मिश्र, काव्यधूरीण आशुकि,
श्री अखिलेशजी ।

के शुभ सहयोग का प्रेम स्मरण करता हुआ अपनी लेखनों को सन्निध्य की सदाशा के साथ सम्प्रति विभ्रम देता हूँ ।

शान्ति निकेतन

कवित्व-मन्दिर

प्रथम जनवरी, १९४७ ई.

हरिश्चन्द्र देव वर्मा ‘चातक’



प्रकाशक की ओर से—



इस वसंत-पंचमी के सुअवसर पर कविवर “चातक” जी की “वासन्ती” पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हुए हमें परम हर्ष है। चातक जी कतिपय उन गिने-चुने कवियों में हैं जिन की प्रतिभा का लोहा नवीनता के समर्थक तथा प्राचीनता के परिपोषक समान भाव से मानते हैं। आपकी रचनाओं का प्रथम संग्रह “नैवेद्य” पर्याप्त लोकप्रिय हो चुका है। “वासन्ती” दूसरा संग्रह है। इस में वे रचनाएँ संगृहीत हैं जो समय समय पर उच्चकोटि के हिन्दी के मासिक-पत्रों में प्रकाशित होती रही हैं। इन में से कुछ का अनुवाद अंग्रेजी तथा संस्कृत में भी हो चुका है। आशा है सुजन समाज इस संग्रह को अपनाकर लेखक व प्रकाशक का श्रम सफल करेगा।

सरस्वती-सदन

५१, फीलखाना,

हैदराबाद (दक्षिण.)

वसन्त पञ्चमी सं. २००३ वि०

मदमूदन दास चतुर्वेदी

मन्त्री

मा. न. मंडल प्रकाशन विभाग

कितनी दूर सजन का घर है?

कितनी दूर सजन का घर है!

आलीरी ! बतला दे तही कितनी दूर सजन का घर है!

चलते चलते बहुत थकी हूँ क्षण क्षण अब चलना दूभर है।

कितनी दूर सजन का घर है!

[मेरा अणु अणु उन्हें समर्पित-

मेरा अन्तर उन से दीपित-

भञ्जु प्रभंजन की सन सन में सुन पड़ता उनका ही स्वर है।

कितनी०

वे मेरे प्राणों की आशा-

वे मेरे नयनों की भाषा-

वे मेरे हैं मैं उनकी हूँ दोनों में न तनिक अन्तर है।

कितनी०

वे मेरे सपने में रहते-

वे मेरे अपने में रहते-

मेरा अपना अब सब कुछ तो केवल उन परही निर्भर है।

कितनी०

चाहे जितना मुझे रुलायें-

चाहे जितना मुझे भुलायें-

पर मुझमें उनका लहराया करता पल पल सुधि सागर है।

कितनी दूर सजन का घर है!

प्रिय-दर्शन

हमें है प्रिय दर्शन की आश ।

मस्जिद ढूँढ़ी मन्दिर ढूँढ़ा ढूँढ़ लिया सब ओर-
बैठ गया मन मार कि प्यारा नहीं मिला चितचोर-

न बुझने पाई मन की प्यास । हमें०

तृष्णा-तरल तरंगों पर नचता था मन नटराज-

माया मय संसृति सागर में दुख का जुड़ा समाज-
बिछाया गया मोह का पाश । हमें०

शरच्चन्द्र की धवली चन्द्रिका में यमुना के तीर-

विश्व-विमोहन बहु वनमाली मिलान, हुआ अधीर-

विश्व सब जँचने लगा उदास । हमें०

कुसुम-कुञ्ज में मधुकर मन ने टेरा गाकर गीत-

किन्तु वहाँ भी मिला न हा! वह अपना प्यारा मीत-

न पूरी हुई हृदय अभिलाष । हमें०

कोयल बन के पञ्चम स्वर में कुहू कुहू कू कूक-

टेरा उन्हें पर न कानों तक पहुँची मेरी हक-

निराशा का निकला निःश्वास । हमें०

श्याम अभू बन गगनांकन में विचरण कर अविराम-

प्रियतम की छवि देख न पाई वह स्वर्गीय ललाम

भरे जिससे जल थल आकाश । हमें०

पर जब हृदय-धाम में ढूँढ़ा ज्ञान-चक्र को सोल-

पुलकित हुआ, दुःख सब भूले; सका न मुख से बोल

दृष्टे में आया पूर्ण प्रकाश ।

हमें है प्रिय-दर्शन की आश ।

छवि-गान

विश्व रचना है किसका काम!

‘किसकी यह नीलिमा निहित है स्वच्छ अनन्ताकाश!

फूल फूल पत्ते पत्ते पर किसका यह आभास!

शुभ्र समुज्ज्वल दिवालोक में किसका है आलोक!

किसका नील समुद्र बहाया बहता जो बेरोक-

न सकता जिसको कोई थाम !

विश्व रचना है किसका काम!

किस से कुछ कुछ में करते मधुकर प्रेमालाप!

किससे यह मयूर ने पाया मनहर केश कलाप!

किसका पञ्चमस्वर में कायल करती है गुण गान!

योगी यती तपस्वी किसका धरते हैं ध्रुव ध्यान—

मग्न रहते हैं आठों याम ।

विश्व०

किसकी ज्योति उषा छिटकाती प्रातः समय अभिराम!

किसके गीत सुनाती सन्ध्या आकर लोक-ललाम!

मलयानिल मर्मर ध्वनि करके किसको रहा पुकार!

प्रिय सुधांगु अम्बर में हैं हैं किससे करता प्यार—

थिरकता बना सौख्य का धाम ?

विश्व०

भावमयी रसमयी मुरलिका किसके गाती गीत !

कल कल कर सरिता दिखलाती किससे प्रेम पुनीत!

रत्न-खचित इस इन्द्र-चाप पर किसकी प्रभा अनूप!

लता-कुंज में छिपा हुआ है किसका मोहन रूप!

भलकती किसकी द्युति घनश्याम!

विश्व०

किसकी सेवा में वे निर्भर भ्रत हैं दिनरात
मानस सर का हंस कौन है किसकी यह सब बात?

रहने लगा निरन्तर प्यो इस चिन्ता में चूर
करुण हृदय की यह उत्कण्ठा हुई न पलभर दूर-

कि किसका है यह खेल तमाम !

विश्व-रचना है किसका काम !

अन्त हटा आवरण हृदय से हुआ निविड तम नाश-
आत्म तृप्ति का शुष्क हृदय के अन्तरतम था वास

प्रेम-द्वार के अतिथि वहाँ पर करते थे विश्राम-
शान्ति स्रोत स्वर्गीय वहाँ पर बहता था अविराम

न था कुछ वहाँ शीत या घाम

विश्व रचना है किसका काम !

कुछ मिलता नहीं पता रे !

१

अगणित लहरें नर्तकियां
किसको हैं नाच दिखातीं ?
किसके चरणों पर अपने
वे फेनिल फूल चढ़ातीं !

२

किसके हित आ सरितामें-
नित अरुण गुलाब बिछाता !
सु-स्वन रव से समीर यह
किसका सन्देश सुनाता ?

३

हाँ - किसे रिझानेको ये
पक्षी गाते हैं गाने ?
तरु देख रहे हैं ऊपर-
किस से आश्वासन पाने ?

४

किसके स्वागत में पल्लव
ये बजा रहे हैं ताली !
इस विश्व-वाटिका का है
कैसा चिर सुन्दर माली ?

५

ताराओं की लिपि में यह
अङ्कित है किसकी गाथा ?
किसके अदृश्य चरणों पर-
नग का झुकता है माथा ?

६

हरियाली के आंचल से
धरती का यह नङ्गापन-
किसके कर हैं ढक देते-
कैसा है वह जीवन-धन ?

७

किसकी आज्ञा से रवि यह-
सब स्वर्ण लुटाता आकर !
है मस्त हो रहा भरना-
किसको सङ्गीत सुनाकर !

८

लतिका पल्लव अञ्जलयुत
पुष्पाभूषण सज अपने-
किम प्रियतम से मिलने के-
देखा करती है सपने ?

९

जगती के उर की धड़कन
किसको दिनरात पुकारे ?
किसकी गोदी में जग यह-
सोता है पैर पसारे ?

१०

भगनाजीवन वंशी में
स्वर कौन फूँकता प्यार !
किसकी यह सब लीला है-
कुछ मिलता नहीं पता रे !

माँ!



रत्नाकर चरणोदक लेकर सदा शान्ति सरसाता है—
अचल हिमालय खड़ा स्वर्ग तक अचल भक्ति दरशाता है ।
आकर के बसन्त चरणों में अपनी भेंट चढ़ाता है,
एक-एक रजकण माँ तेरा गौरव-पाठ पढ़ाता है ।

अधिक कहें क्या तेरी शोभा स्वर्ग लोक से न्यारी है ।

जननी जन्मभूमि तू मेरी प्राणों से भी प्यारी है ॥

सुरभि-पूर्ण तव दिव्य तपोवन किसका मन न चुराते हैं?
भाँति-भाँति के गान भक्तिमय विहग वृन्द तव गाते हैं ।
प्रेमाकुल हो शरद श्याम-घन उमड़-धुमड़ कर आते हैं,
सुभगे! तव पद-पद्मों में ही शान्ति अन्त में पाते हैं ।

रीझ रीझ कर निशानाथ ने तव आरती उतारी है ।

जननी जन्मभूमि तू मेरी प्राणों से भी प्यारी है ॥

मञ्जु मलय मारुत के झोंके स्वर्गभूमि से आते हैं—
पुण्य-प्रसू! तेरे दर्शन का सुख सहर्ष ले जाते हैं ।
तब फिर नन्दन वन सजता है और देव-गण गाते हैं—
जय जय भारतभूमि! जयति जय जय!! कह मोद मनाते हैं ।
तेरी कीर्ति-कथा कहने में सदा शारदा हारी है ।
जननी जन्मभूमि! तू मेरी प्राणों से भी प्यारी है ।

तेरी ही गोदी में माता प्रथम सन्ध्या श्रोत बड़ा.

तेरी ही गोदी में आकर हरि ने गीता-ज्ञान कहा ।

तेरी ही गोदी में अगणित सुधी शिरोमणि हुए अहा ।

तेरी ही गोदी में खेले रण बाँके रणधीर महा ।

मेरा रोम-रोम यह अम्बे! तेरा ही आभारी है ।

जननी जन्मभूमि तू मेरी प्राणों से भी प्यारी है ॥



उस पार



अब हम पहुँच गए उस पार ।
निकल व्यक्ति के आवर्त्ती से,
अब हम पहुँच गए उस पार ।
जहाँ सभी अपने ही अपने—
सब के ही समान हैं सपने ।
जहाँ धातु के टुकड़ों पर ही लुटता नहीं हृदय का प्यार ।
अब हम पहुँच गए उस पार ।
जहाँ सभी सुन्दर ही सुन्दर—
जहाँ सभी स्वाभाविक सुखकर ।
जहाँ सभी अपने प्रति सच्चे रहने में हैं परम उदार ।
अब हम पहुँच गए उस पार ।
जहाँ मनुज है एक कहाता
टुकड़ों में न जहाँ बँट जाता ।
जहाँ द्वेष के लिए न दग हैं सब में अपनापना अपार ।
अब हम पहुँच गए उस पार ।
जहाँ गगन ऊँचा महान है ।
जहाँ जिन्दगी स्वाभिमान है ।
प्राण प्राण में जहाँ माधुरी करती है रस का सञ्चार ।
अब हम पहुँच गए उस पार ।



प्रवासी



आँखों में भर स्वप्न मिलन का मैं चल दिया प्रवासी,
मैं क्यों ठहरूँ यहाँ ! नहीं हूँ मैं इस जग का वासी ।
मेरा कौन यहाँ अपना है ! यह है देश विराना,
बेहोशी से अधिक कष्टप्रद यहाँ ' होश ' में आना ।
' दुनिया ' एक भूल है मीठी सब उस में भूले हैं
ये रङ्गीन फूल पल में ही झड़ने को फूले हैं ।
' प्रेम ' यहाँ भारी धोखा है—कूर व्यर्थ जीवन का,
कोई ऐसा यहाँ न जिस से भेद कड़ूँ मैं मन का ।
यहाँ हँसी में अरे? छिपा बैठा विषाद रोता है,
हरे भरे उपवन की गोदी में पतझड़ सोता है ।
क्षण-क्षण यहाँ इकट्ठा होकर कहलाता ' जीवन, है—
फिर वह भी दयनीय विनश्वरता का अधिकृत धन है ।
बाहर का सौंदर्य यहाँ है अन्दर सब सूना है,
दिनमणि के प्रकाश में बढ़ता तिमिर और दूना है ।
यहाँ मना है हृदय खोलना ' पाप ' लगाना मन है,
यहां हृदय में कब पीडा है पीडा ही सब तन है ।
लौट रहे रीती सी गागर लेकर सब जीवन की
नहीं फूल जानता साध है क्या मधुकर के मन की ।
जिस की एक झलक की कीमत यह मेरा जीवन है—
आँखों से ओझल वह भी तो निष्ठुर मेरा धन है ।
दुनियाँ का कोना कोना सब मैंने ज्ञान लिया है,
हँसी डूबती है आँसू में यह भी जान लिया है ।
मैं हूँ किसका कौन ? मुझे क्यों कोई याद करेगा ?
दो दिन को आया, मेरा क्या ? हर्ष विषाद करेगा ?

*

*

*

*

कितने दिवस बिताये मैंने यहाँ व्यर्थ ही फंसकर—
आज बुलाहट आयी ' घर ' से जाऊँगा मैं हँसकर ।
फिर न कभी आना हो शायद सुनलो साथी प्यारे ?
आओ मिल लें गले, सदा को होते हैं हम न्यारे ।

प्रयाण



चलना है तो चल रे भाई ! चलना है तो चल ! !

कितने दिवस मूँदकर आंखें चले गये चुपचाप
कितनी रातें गईं शेष इसकी क्या है कुछ छाप ?
तू ही एक पड़ा सोता है अब भी हाय ! सँभल !

चलना है तो चल रे भाई ! चलना है तो चल !

अपनी धुन में मस्त किसी की सुनती है, कब बात—
चलती ही जाती है लहरें, चलना है दिनरात ।
मार थपेड़े तट से कहतीं “ तू क्यों पड़ा अचल ? ”

चलना है तो चल रे प्यारे ! चलना है तो चल !

नन्हीं-सी बालिका सुरभि को जाना है उस देश,
चिन्तित सुमन पवन बोला यों करते हुए प्रवेश —
“ मैं चलता हूँ साथ चले वह चिन्ता है निष्फल ” ।

चलना है तो चल रे ! फटपट चलना है तो चल ?

नभ का पथिक बढ़ाता जल्दी जल्दी अपने पैर -
कहीं किसी से मिलकर उसको भी करनी है सैर ।
उसको जाते देख घरों को पक्षी चले विकल ।

चलना है तो चले भाई ! चलना है तो चल !

यह जो रूप रंग की चलती फिरती-सी तस्वीर -
जिसे देखकर के पैरों में पड़ जाती जैजीर ।

चला जारहा रूप-रंग यह उसका भी प्रतिफल ।

चलना है तो चल दे प्यारे ! चलना है तो चल !

जब सब अपने घर जाते हैं तब तू भी घर ध्यान—
अपने घर को चल दे प्यारे ! मत हो अब हैरान ।
कहीं हाथ से तेरे भी यह समय न जाय निकल ।

चलना है तो चल दे फटपट ! चलना है तो चल !

द्वार ।



मैं ईंट पत्थरों से निर्मित, लोहे का भी हूँ कहीं कहीं,
हैं मध्य भवन प्रासाद सभी मुझ से कोई भी रहित नहीं ।
नैपुण्य शिल्पियों का मुझ में उत्कृष्ट कला का है अङ्गन-
जिसको विलोक पल भर में ही होता विमुग्ध दर्शक का मन ।
जैसे मुख से तन की शोभा वैसे मुझ से शोभित निकेत;
मैं अगृभाग में नृपति तुल्य हूँ विजय वैजयन्ती समेत ।
कोई आए उसका मुझ से होता पहिले ही है परिचय ।
लेकिन कितने पढ़ सके हाय! मेरा यह सुन्दर सरस हृदय!
कितने नृप रण से हार हार आए जब अपने सिंहद्वार-
तब बन्द द्वार कर के उन से रानी बोली यों बार बार-
“तुम तो हो कोई छली अरे! मेरे स्वामी विजयी उदार-
फिर कैसे कर सकते प्रवेश यह है शूरों का सिंहद्वार”
यह है शूरों का सिंह द्वार हम हैं सचमुच कायर महान-
यह सोच उन्हें रण-रंग चढ़ा फिर मचा दिया जा घमासान-
यदि मैं न बन्द होता तो फिर मिलता न अन्त में उन्हें विजय
कायर न कलंकित करें मुझे, मेरा भी तो है यह निश्चय,
लेकिन कितने पढ़ सके हाय! मेरा यह सुंदर सरस हृदय!!
कितने ही बंदनवार टँगे-मंगल कलशों के सजे साज-
आ रहे युगल प्रेमिक देखो! मैं भी पुलकित होरहा आन ।
उन्मुक्त हृदय से मैं उनको सादर कर अपने में प्रवेश
चाहूँ ऐसा ही सदा रहूँ देखता सुझावे वह निर्निमेष ।
मानव-सा मैं कर सका कहाँ सौंदर्य प्रेम पर प्राप्त विजय!
मैं तो अपनी यह दुर्बलता कहता हूँ सबसे खोल हृदय!
लेकिन कितने पढ़ सके हाय ! मेरा यह सुंदर सरस हृदय ।
जब शाक्य-सिंह चल दिया अरे! सोती रानी का मोह छोड़-
बुद्धत्व प्राप्त करने के द्वित अपने जीवन की लगा होड़ ।
तब धीरे से खाला मुझ को जैसे मैं भी चुपचाप रहूँ?
मैं असमञ्जस में पड़ा हाय! वरदान रहूँ या शाप रहूँ!

तब मैं नीरव था बना रहा उज्ज्वल भविष्य जग का निहार—
 चिंता क्या जो इस दुनिया ने मुझको न सराहा एकबार ?
 मैं तो समष्टि के लिये व्यष्टि का करता हूँ बलिदान अभय ।
 लेकिन कितने पढ़ सके हाय ! मेरा यह सुन्दर सरस हृदय !!
 जब विद्यामें होकर प्रवीण आया था कविवर कालिदास—
 तब मुझे अनावृत करने में था प्रकट किया वाणी विलास—
 कोई वाणीविद है आया, पत्नी ने ऐसे बोल कहे—
 कवि ने इन शब्दों को लेकर कुछ ग्रंथरत्न अनमोल कहे ।
 यदि यह सब कुछ न हुआ होता तो कौन बता सकता निश्चय-
 मिलते ये भाव-प्रसून हमें जिनसे संसृति है सौरभमय ।
 लेकिन कितने पढ़ सके हाय ! मेरा यह सुन्दर सरस हृदय ।
 थी खड़ी देहली पर तरुणी आया था हों—कोई कुमार
 हृत्तन्त्री थी मनमना उठी जैसे ही दो दृग हुए चार ।
 तब हाय ! किसी निष्ठुर ने आ साँकल से मुझको बन्द किया-
 मैं चीखा चिल्लाया कितना ? उमने न मुझे स्वच्छन्द किया ।
 वह शीश फाड़ता था मुझ से बेवसी मुझे थी बर्ना शूल ।
 जीवन की यह वेदना बढ़ी, मैं नहीं आज तक सका भूल
 लहराता प्रेम सिंधु उसका पलभर में ही सूखा असमय—
 मेरा कुछ इसमें दोष कहाँ ! आपही करें इसका निर्णय ।
 लेकिन कितने पढ़ सके हाय ! मेरा यह सुन्दर सरस हृदय ॥
 जब जीवन में उलझन होती कल्याण-मार्ग रुक सा जाता—
 भावों में काँई जम जाती, सूनापन आँखों में आता—
 जब आसपास नीचे ऊपर छा जाता है बस अधिकार,
 तब सब आकुल उठते पुकार खोलो ! खोलो प्रभु दया-द्वार !
 खुल जाता क्षण में दया-द्वार, होता प्रकाश का दिव्य उदय—
 नव जीवन की बरसा होती, होता सब पर सौभाग्य सदय ।
 लेकिन कितने पढ़ सके हाय, मेरा यह सुंदर सरस हृदय??



हृदय !



कल कुसुमों से भी कोमल हूँ,
मधु से भी मैं महा मधुर हूँ !
मुझ में बहुत समा सकता है-
यद्यपि मैं बोटा-सा उर हूँ ।

समवेदना शील मैं कितना !
जग का रोना मुझे रुलाता ।
जग हँसता तो मैं हसता हूँ-
जग गाता तो मैं हूँ गाता ।

नीति-निपुण मस्तिष्क किन्तु मैं-
सच कहता हूँ महा सरल हूँ !
आँखों में बह बह आता है-
जल-सा एक पदार्थ तरल हूँ !

यह मेरी ही शक्ति असुन्दर को-
जो मैं सुन्दर हूँ करता ।
निर्जन मरु-प्रदेश में भी मैं-
नन्दन की सुन्दरता भरता ।

मेरा ही संस्पर्श प्राप्त कर-
कवियों की वाणी प्रिय लगती
वहाँ आँधेरा सूनापन है-
जहाँ न मेरी प्रतिभा जगती ।

अपना प्यारा देख सामने-
मैं आँखों में आ जाता हूँ ।
बनकर मृदुल हँसी होठों में-
मधुर स्वप्न सा छा जाता हूँ ।

जहाँ हृदय है वहाँ आरे ? मैं
अपने आप चला जाता हूँ ?
अपने किसे नहीं प्रिय लगते ?
फिर क्या डर जो अपनाता हूँ ।

तरह तरह के खेल खिलौने-
शैशव में मुझ को प्रिय लगते ।
जब आती यौवन की मस्ती-
सोये भाव अनेकों जगते ।

कभी किसी के मधुर हास में-
कभी मनोहर अलकाली में
मैं अपने को खो देता हूँ-
उजियाली में अधियाली में ।

कभी कर-कमल में मैं प्रिय के-
हृदय-कमल बिज दे देता हूँ ।
दोनों में कितनी समता है-
घुल मिल इसका रस लेता हूँ ।

कभी कभी भुज-वल्लरियों में-
मैं चुपके से बँध जाता हूँ ।
क्या बतलाऊँ उस बन्धन में-
बँधकर कितना सख पाता हूँ ?

पर अतीत दिवसों की जब है-
चिता-भस्म सिर पर मँडराती ।
श्वेत-बाल मिस या कि जरा ही
आकर अपनी ध्वजा उड़ाती ।

तब कुछ होश मुझे आता है-
यह सब जग लगता है सपना ।
किस पर गर्व करूँ ? अब फूलूँ ?
कोई नहीं यहाँ जब अपना ।

हृदय चोर होगये अनेकों -
उन से सावधान प्रिय रहना ?
'नहीं हृदय से बढ़कर धन है' -
यही हृदय का है बस कहना ॥

एकान्त



युग की डलचल से दूर यहाँ रहता हूँ हूँ- मैं एकाकी -
अपने ही में मैं मस्त हुआ। कैसी शराव कैसा साकी!
आता जब मेरी शरण यहाँ दुनिया का कोई दुखी हृदय-
सुन कर उसका सकरुण क्रन्दन मचता अन्तर में महा प्रलय ।
मेरे अञ्जल में शान्ति उसे क्षण भर को भी यदि मिल जाती -
सच जानो तो मेरे मन की मुरझी कलिका कुछ खिल जाती ।
चाँदनी छिटकती जब भू पर चाँदी की बिछ जाती चादर-
सुरभित समीर के झोंके जब सुख की बरसा करते आकर-
ऐसे ही में दो सरस हृदय ले प्यार भरा यौवन अपना-
खोजते मुझे आते आकुल आँखों में भर सुख का सपना ।
वे प्रेम-विसुध बातें करते नयनों की नीरव भाषा में-
इंगित से जाने क्या कहते? डूबे रहते किस आशा में?
सुन सुन कर उनकी प्रेम-कथा हो आती है मुझको सिहरन-
भीतर ही भीतर हा! मेरा जाने कैसा होजाता मन?
उनके जाने पर मैं उनको देखता कल्पना के ढग से -
थे कौन कहाँ पर वे बैठे? आते जाते थे किस मग से?
यह सब लगता कितना अच्छा ! भावुक इसका अनुमान करो !
मेरे भी तो है एक हृदय, उसके भी सुख दुःख गान करो!
योगी जन भी मेरी महिमा गा गा कर नहीं अघाते हैं -
जगती क्या! जगदीश्वर को भी मेरी गोदी में पाते हैं ।
कवियों का मैं कितना प्यारा? मुझ में कितने ही भाव भरे!
जानेंगे कैसे शून्य हृदय, मुझ में हैं क्या क्या चाव भरे!
सञ्चित मुझ में कितने रहस्य? मैं सभी छिपाये रहता हूँ -
जब मिल जाते हैं सरस हृदय तब बात हृदय की कहता हूँ!!



मौन



मौन का इतिहास मैं कैसे सुनाऊँ?
मौन रवि-शशि, मौन वसुधा, और मैं क्या क्या गिनाऊँ?
मौन का इतिहास मैं कैसे सुनाऊँ?

मौन हाँ से प्रगट सब स्वर,
मौन है वह एक निःस्वर
मौन है भाषा दृगों का हृदय भी जिससे हिलाऊँ ।
मौन का इतिहास मैं कैसे सुनाऊँ?

मौनिमा के सिंधु से कवि
भावना-मुक्ता लसित टबि-
ढूँढ़ कर लाता: सुखरता में जिसे जग हित लुटाऊँ
मौन का इतिहास मैं कैसे सुनाऊँ?

नवल वाला के मधुरतम--
मौन पद दे प्राण प्रियतम--
मौन हं मैं, मौन की महिमा न कह कर पार पाऊँ ।
मौन का इतिहास मैं कैसे सुनाऊँ?



बालक



उभय प्रेमियों के तुम पावन परम प्रणय-आराधन!
अपने को जीवित रखने के सबसे सुन्दर साधन!
मानवता-कृषि के मृदु अंकुर! रस के सरस खिलौना!
बूल भरे हीरे भूतल के, गोदी के प्रिय छौना!
ममता के आधार! वृहत के क्षुद्र रूप भी शोभन!
जीवन भर की आशाओं के एक अमूल्य प्रलाभन!
मुसकानों से बने सुनहली किरणों से चमकीले!
सदा सौरभित हृदय-लता के फूले फूल फीले!
हास और उल्लास तुम्हारी किलकारी में बसते—
कितने मन मृग नहीं तुम्हारी हरियाली में हँसते !
अपने में परिपूर्ण न भाता तुमको सांना चाँदी—
एक प्यार की थपकी ही पाने के तुम हो आदी!



अन्तर्नाद



अपने मन को ठीक ठीक जब मैं पहिचान न पाया,
तब कैसे मैं अखिल विश्व की समझ सकूँगा माया?
आज मॉन भाषा में मुझ से कौन कह गया आकर--
“पहिले अन्तस्तल का कोना कोना खोजो जाकर”!
सपना सा संसार भला फिर क्यों इतना सुन्दर है?
कितने आकर्षण का यह छोटा सा जीवन घर है?
कहाँ मनुज की इच्छाओं का अन्त कौन बतलावे!
रुदन भाग्य में बदा कहाँ से हँसना मानव पावे?
होता प्यार अनन्त और जीवन स्थायी यह होता--
तो फिर बँधा नियति से मानव क्यों बेचारा रोता !
आशाओं इच्छाओं का ही नाम दूसरा जग है,
बड़ा कठिन है यहाँ खोजना कौन हमारा मग है!

एक स्वप्न-छाया मरीचिका के पीछे मैं भटका—

रंग - बिरंगे फूलों पर तितली-सा जा मन अटका

मन का मेला और आँख का देखा बहुत तमाशा—

अब क्षण भर तो शान्त मुझे रहने दे मेरी आशा !

खोज खोज कर चले गये कितने मलयानिल मुझ को—

किन्तु न कुछ सन्तोष हृदय का दे पाया मैं उनको ।

खूब धूल के महल बनाये जाने या बेजाने—

यौवन की वाटिका बीच छेडे रसभरे तराने ।

कितना मधुर हृदय लेकर के द्वार तुम्हारे आया—

किन्तु तुम्हारे वरद - हस्त की मिर्जी न क्षणभर छाया ।

कितनी बार मिटी रवि- किरणों चाह मिटी कब मन की!

चिर - अतृप्ति ही एक संगिनी बनी हाय! जीवन की ।

दूरागत यह पवन तुम्हारे खेल रहा अंचल से--

और यहाँ मैं खेलू कबतक अपने हृदय विक्कल से?

कबतक आँसू से गीले गानों की जोड़ूँ कड़ियाँ !

कबतक गिनता रहूँ मौन दारुण विषाद की घड़ियाँ?

पल पल करके यों ही देखा बीत रही सब बेला--

रहा नहीं जाता है मुझ से अब तो और अकेला-।

धीरे धीरे अब मेरे मधु का घट सूख गया है--

किंतु अभीतक तुमसे मिलने का मृदु भाव नया है ॥

*

*

*

*

बालारुण किरणों के रथ पर चढ़ उस ओर चलूँ मैं—

तुम से मिलने को वर्षा- बादल-सा उमड़ पड़ूँ मैं ।



दीस



कल्पना के अधर से स्वर्णिम दिनों को चूमता हूँ,
आह-सा होकर व्यथित संसार में मैं घूमता हूँ ।
अक्षरों की पंक्तियों में भावनाएँ बाँध कर के—
आज भी मैं जी रहा हूँ प्रेम में सौ बार मर के ।
वाक्य हीन विषाद नभ को देख कितनी बार रोया—
और आँखों में हृदय रख प्रेम का पथ भी सँजोया ।
अरुण अपनी भावनाएँ प्रातः जब नभ में बिछाता—
और किरणों से दिवस भी जोड़ता जब स्नेह-नाता—
तब तड़प कर प्राण मेरे चाहते तुमको पुकारें—
मिलन के उप एक क्षण पर सैकड़ों ऋतु चक्र वारें ।
बूँद-सा अस्तित्व अपना प्रेम-जलनिधि बचि खोऊँ—
'प्राप्य' जो मिलजाय, तो फिर और मैं किस हेतु रोऊँ ।

खेल में पाया जिस, अब प्राण में पाएँ उसे हम—
इस उठे वातावरण जब गीत में गाएँ उसे हम ।

आज मेरे और तेरे बीच में यह कौन आया ?
पवन-कम्पित पत्र-सा मन काँपता क्यों भय ममाया !
लालसाओं का अनोखा चित्रपट जीवन बना क्यों ?
आज पलकों पर उतरता स्वप्न का यह दल घना क्यों ?
प्यास कैसी, क्यों हमारा सूखता जाता गला है ?
बिक गया ऐसा कहाँ मन ? यह पता किसको भला है ?
ग्रंथियाँ ये पड़ गई जिनको न मैं सुलभा सका है—
द्रुन्द भावों का मचा है हाथ ! मैं बेहद थका हूँ ।
आज मेरी शून्यता से पूर्णता कोई बदल ले ?
और क्षण भर के लिये मेरे दुखों पर हाथ मल ले ?
शून्य में अंकित हृदय का घोर हाहाकार मेरा
आज परदे में छिपा, है कर रहा कोई चितैरा ।
करुण कोमल गान अपने आन छाती से लगाए
मलय मारुत-सा बहँ मैं क्यों मुझे कोई बहाए ?

स्वप्न है, टाया जगत है, किंतु फिर भी एक आशा
कर रही पीड़ित हृदय को, हाथरे ! कैसा तमाशा !
हास्य होता तो तुम्हारे अधर पर मैं मुस्किराता—
प्रेम का संगीत होता तो हृदय में स्थान पाता ।
किंतु मैं कुछ भी नहीं हूँ दुःख का आहार हूँ मैं—
आप अपने के लिए भी विकल मन का भार हूँ मैं ।
क्या पड़ी संसार को मेरे लिए जो दुख मनाए—
हँ मना-समवेदना के बोल भी कोई सुनाए ॥



कोई क्या गाये ?



दिल ही न रहा कोई क्या गाये ?

पतझड़ के सूखे पत्तों-सा जब बिखर गया है प्यार सभी ;

जब उजड़ गई दिल की बस्ती, उजड़ा सुखका संसार सभी -

वेदना विकम्पित स्वर मेरा मुश्किल से अब ता सभ पाये ।

दिल टूट गया कोई क्या गाये ?

सुख की उजियाली होठों पर अब कभी न देगी दिखलाई ;

सूने दिल में रह-रह कर के नीरसता लेती अँगड़ाई ।

ठंडी आँहें भरता समीर मेरा दुख उसको तड़पाये ।

कोई क्या गाये ?

आँखों में काटीं हैं मैंने रो रोकर के कितनी रातें -

ताराओं से पूछीं मैंने अपने प्रिय की कितनी बातें ।

खोये-से भूले प्राणों को क्या कहकर कोई समझाये ?

कोई क्या गाये ?

पलकों पर बैठे मुग्ध प्राण जाने यह कब से अकुलाते -

पर अब तो उनकी छाया की छाया भी हाय ! न छूपाते ।

निष्ठुर वे जब से गये हाय ! सपने में भी तो ना आये ।

दिल टूट गया कोई क्या गाये ?

भा अभी- अभी संगीत छिड़ा - रंगीन हो रहे थे सपन -

इतने में तुम चल दिखे कहीं लेकर के सारे सुख अपने ?

मैं रोया, पर इस दुनिया ने दो बूंद न आसूँ टुलकाये !

कोई क्या गाये ?

उपवास कर रहा दिल मेरा बरसों से पर इतना कड़वा -

शब्दों में प्यार भरूँ कैसे मुझको यह हरदम डर रहता -

ऐसा न कहीं हो जो फिर इस मन को कुछ शेष न रह जाये,

कोई क्या गाये - -

दिल ही न रहा कोई क्या गाये !



बालिका



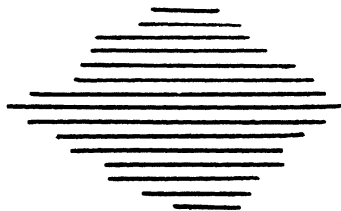
किरण-तन्तुओं से न अभी छूटा था वुनना जाल -
अभी कल्पना में गूँथी जाती थी तारक माल -
हरिश्चिता के प्रति न गया था अभी सखी का भाव -
अभी न नयनों में सपनों के जादू का था चाव ।
सान्ध्य-किरण की स्वर्ण-बीन पर वह अश्रुत संगीत --
अभी न सुनने की उसमें उमड़ी थी साध पुनीत ।
अभी स्नेह का श्रवण खुले इसमें थी किञ्चित् देर --
अभी न लाजारुण हास्य अधरों पर सकी बिखेर ।
अभी दृष्टि की तृप्ति खिलौनों को न सकी थी छोड़ --
बात बात में अभी बदी जाती थी हँस हँस होड़ ।
मृग-शावक बिह्वी बच्चों पर अभी बड़ा था प्यार -
अभी गीत से मधुर कुसुम से भी थी वह सुकृमार -
हृदय चक्र में राशि राशि छवि हुई न पुंजीभूत --
अभी नहीं व्हकान आये उसे प्रेम के दूत ।
अभी निभूत में नहीं सताती परदेशी की चाह --
अभी चित्र को देख दृगों में लाज न पाती राह ।
अभी ज्ञात थी उसे नहीं अपने प्राणों की प्यास
अभी बालिका-सुलभ प्रकृति का नयनों में था हास ।



कोऽहं?



रहस्य से यह भरा जगत है मैं खुद भी हूँ इक रहस्य भारी—
है दोनों इक दूसरे के पूरक न कोई नर यों न कोई नारी।
समय य धारा सा ढल रहा है खिसकते यौवन के रेणु-कण हैं—
न जाने किसका विरह सताता हुये हृदय में हजारों व्रण हैं!
मैं आज हँसने को हँस रहा हूँ, परन्तु क्यों कुछ समझ न पाता।
न चाहता है मनुष्य जिसको क्यों उसको देता उसे विधाता ?
है रूप पर मर रही य दुनिया परन्तु जिससे है रूप मरता—
न देख पाती उसे हैं आँखें नकाब चेहरे से कब उतरता?
जुदा जो होना था तो न मिलते, अगर मिले थे तो पास रहते—
हृदय लगाते हृदय से लगते, हमारी सुनते कुछ अपनी कहते !
उनीदी आँखों से काली रजनी-निहारा करती है किसका मुखड़ा?
अतन्द्र य नील व्योम किसको सुनाया करता है अपना दुखड़ा?
पता न लगता य भेद क्या है असीम क्यों सुख हुये न नर के?
सुनहले स्वप्नों के देखने में हमारे दिन हैं क्यों जाते सरके?
न फूलों से है हमारी मैत्री, नहीं हैं काँटे हमारे दुश्मन—
परन्तु जिसके ये खेल सब हैं- वह है खिलाड़ी मनुष्य का मन।



जीवन और मरण

माँ के मधुराञ्चल-सा फैला ऊपर है असीम आकाश
और पिता की दया तुल्य नीचे विस्तृत वसुधा का वास
इसी दृश्य के बीच कर्म के बन्धन में बँधकर प्राणी-
आता जाता नित्य यही है जीने मरने का इतिहास ।

काल डाल में खिले हुये हैं जीवन, मरण रूप दो फूल-
दानों ही मधु-पूर्ण और हैं दोनों ही सुन्दर सुखमूल ।

जिसने एक फूल भी चाहा उसे दूसरा अपने आप-

मिल जाता बस यही सृष्टि का नियम इसे मत जाना भूल ।

उच्च शिखर पर तुम बैठे हो पड़ा धूल में मैं नादान-
कैसे तुम्हें पकड़ मैं पाऊँ ? चिन्ता है बम यही महान ।

पर तुमने कर दया लगादी जीवन मरण रूप सीढ़ी-
नहीं जानता तुम कितने दयालु हो ! ओ मेरे भगवान !

प्रथम डाल से उड़कर पक्षी डाल दूसरी पर जाता-

डाल दूसरी से फिर उड़कर प्रथम डालपर है आता ।

जाने आने के इस क्रम को मृत्यु और जीवन कहते-

इसमें दुख सुख का क्या भगड़ा, इसे न कोई समझता !

स्वर्ण बिहान अन्त में बनता रजनी का श्यामल परिधान-

रजनी के काले अंचल में खिल उठता फिर स्वर्ण विहान ।

चलता रहता चक्र सदा यह नहीं एक पल को थमता-

जीवन-में है मरण, मरण में जीवन का अमिट विधान ।

एक रज्जु दो छोर उसी के जीवन मरण रूप प्यारे-

दोनों ही हैं एक किन्तु हैं दोनों ही न्यारे न्योर ।

कौन प्रथम है कौन दूसरा गूढ़ पहली है यह भी-

अन्त आदि या आदि अन्त है, खोज खोज पांडित होर ।

परिवर्तन का नाम जगत है, जीवन, मरण, धूप छाया-

दुख की अन्तिम गति ही सुख है इस से दुख है मनभाया ।

मानव क्या है ? प्रेम दया का विकसित पूर्ण रूप सुन्दर-

जो कुछ देख रहीं य आँखें, वह सबकी सब है माया ।

है सौन्दर्य वही जो शिव है, सत्य वही जो श्रेयस्कर-

मानव भाषा में न 'प्रेम' से अन्य शब्द कोई बढ़कर ।

जीवन में ही चलो सत्य, सौन्दर्य प्रेम की खोज करें !

जिससे अपने प्रभु के सन्मुख जाने में न हमें हो डर ॥

क ल्प ना



बिना बादल के करती वृष्टि -
विना स्रष्टा के रचती सृष्टि ।
बिना तूली के भरती रंग -
कल्पना के सब अद्भुत ढंग ।
युगों को क्षण में रही समेट -
दूर रहकर कर लेती भेंट ।
पड़े कितनी बाधाये विकट -
न रुकता क्षणभर इसका शक्ति ॥
खिलाती पतझड़ बीच वसन्त -
सुलभ हैं इसको सभी दिगन्त ।
चाँद को लाती भू पर खीँच -
दिखा देती सब आखें मीँच -
अनोखा इसका है संसार -
जहाँ प्रेमी गण सौ सौ बार -
बैठते हंसते हैं कर प्यार -
रूठते मिलते बाँह पसार ।
न करता इसे अभाव अधीर -
किंतु रखती यह सबकी पौर ।
सुधा की है यह अक्षय पात्र -
चाहते इसको मानव मात्र ।
जिस किसी को करती यह स्नेह -
अमर होती उसकी यश - देह ।



सा ध ना के दो रूप



यौवन मद विह्वल ये लहरेँ एक दूसरे पर गिरकर-
अब न हमारी इच्छाओं के लगा सकेंगी स्वप्निल पर ।
यौवन मद-विह्वल ये लहरेँ एक दूसरे पर गिर कर -
हमें सिखाती हैं वे गिरना प्राणेश्वर के चरणों पर ।
निर्वसना चाँदनी गगन से उतर भरोखे से आकर,
अब न हृदय को छीन सकेगी मौन भाव से मुसका कर ।
निर्वसना चाँदनी गगन से उतर भरोखे से आकर -
कहती है आवरण छाड़ सब, मिलो ! ओरे प्रियसे जाकर ।
श्याम सजल सुन्दर बादल से चपला का प्रेमालिङ्गन-
अब न कभी सखि ! कर पायेगा उन्मन मन रोमांचित तन
श्याम सजल सुन्दर बादल से चपला का प्रेमालिङ्गन-
कैसे दो तन रहें ? सिखाता, जहाँ एक होजाता मन ।
कौमल कलिकाओं का लेता मलय पवन रह रह चुम्बन,
अब ये दुर्बल दृश्य कभी भी कर न सकेंगे चंचल मन !
कौमल कलिकाओं का लेता मलय पवन रह रह चुम्बन,
बतलाता यह जहाँ लगन है वहीं प्रकट है अपनापन ।
चन्द्र कुमुदिनी का सम्मोहक दूर दृष्टियों का अभिसार-
उठा न पायेगा प्रशान्त मानस में अब प्रलयङ्कर उवार ।
चन्द्र कुमुदिनी का सम्मोहक दूर दृष्टियों का अभिसार-
बतलाता यह हमें दूरता रोक न सकती प्रियका प्यार ।



सिसकती दुनिया और माँ के तरुणों से

अब भी पूछ रहे हो मुझ से—कहो कौन सा काम करूं ?
मिट्टी की दीवाल ज़रा सी और फूस की छानी-
कुआ नहीं है, ताल तैलियों का पीत है पानी
टूटी खाट स्वयं पृथ्वी पर सोना चाह रही है-
ये कब हैं श्रम विन्दु देह भी रोना चाह रही है ।
बर्तन ही फूटे न भाग्य भी तो इनका फूटा है-
ईश्वर ही क्या? इन्हें सभी ने मिलकर के लूटा है ।
जर्जरता कृशता ने जब दुनिया में ठौर न पाया -
तब इनने ही उन्हें रक्त देकर के हैं अपनाया ।

इनके अधरों के कोनों से हंसी न फूटी क्षणभर:
सपने में भी इनकी चिन्ता-लडी न टूटी क्षणभर ।
असफलता, इनके जीवन में भेद न कुछ दिखलाता-
धनिकों का है केवल इनसे ठगने ही का नाता ।
इनकी गति कुण्ठित, वाणी अपहृत-सी है दिखलाती,
इनकी सुनी सी आँखों में जन्म शून्यता पाती ।
आँसू, शोक, निराशा चिन्ता इन दुखियों का धन है
इनका जीवन मरण तुल्य, मरना इनका जीवन है ।

ये निरीह कंकाल चीथड़ों से निज लाज छिपाये-
ये कितने भूखे! रोटी के लिये हाथ फैलाये!
इन्हें देख कर मानव होने का दुख होता भारी,
क्या ये भी मनुष्य हैं ईश्वर! हा!! कैसी लाचारी !
ईश्वर! क्या ईश्वर हैं कोई? कैसा वह ईश्वर है ?
जिसकी सृष्टि मर रही भूखों-पर वह आप अमर है!!
न्याय ढोंग है, धर्म ढोंग है, ईश्वर एक भुलावा-
मानवता बन्धुता और समता का झूठा दावा?

जबतक क्रन्दन-पूर्ण सिसकती दुनिया भरती ओहं-
जबतक इनके अन्न वस्त्र की पूर्ण न होती चाहें-
तबतक धनी और महलोंवाले उत्तरदायी हैं-
दुखियों के रहते सुख भागें तो वे अन्यायी हैं ।
इन्हें अन्न दो! इन्हें वस्त्र दो! इन्हें ज्ञान दो जाकर -
तो मानवता सार्थक होगी तुम तरुणों को पाकर ।
अब भी पूछ रहे हो मुझ से कहो कौन-सा काम करूं ?



चिन्तन



घाटी निज नग्नता छिपाती हिमकी चादर ओढ़ नवीन—
फिर न कहीं दिखलाई देते उसके निम्न गर्त छवि-हीन ।
नवल पल्लवों के मिस तरु भी निज मंगापन भाँप रहे—
काँटों की क्रूरता छिपाये फूलों के दल काँप रहे ।
हिम गलता, पल्लव गिरते हैं, फड़ जाते वे कोमल फूल—
फिर द्विगुणित मंगापन उनका हृदय बीच उपजाता शूल—
हम न आवरण प्रिय होबें सखि! हम न छिपायें अपने को—
हम न कभी ललचायें मिथ्या-गौरव के उस सपने को ।

फूलों ने सुस्पष्ट कर दिया कलियों में जो था अस्पष्ट
इसी लिये सब फूल चाहते सहकर के काँटों का कष्ट ।
उच्च देश वासी होकर भी दिखलाता निज चन्द्र कलंक—
तभी उसे उडुराज मान कर गगन लगाये है निज अङ्क ।
हम भी फूल और शशि-सा ही सखि! सब से निज हृदय कहें—
व्यर्थाडम्बर की बहिया में कभी भूल कर नहीं बहें ।

अन्तिम शय्या पर प्रियतम के संग करने को चिर विश्राम—
सरपट भाग रही है सरिता वर्षा शीत या कि हो घाम ।
अथक निरन्तर एक भाव से भरना करता कल कल-नाद—
प्राणेश्वर के गुण गायन का क्या पड़ गया इसे भी स्वाद?
चल सखि! चल! हम भी सरिता से निज प्रियतम में मिलजावें
निर्भर-से उनके गुण गावें, हँसी खुशी से खिल जावें !!



सिद्धार्थ



पादप लतिकाओं का देखा -
 मधुमय परिस्मन चुम्बन;
 दूर क्षितिज में नभ वसुधाका
 देखा मोहक मधुर मिलन ।
 राकापति की आँख मिचौनी-
 देखी मेघों की क्रीड़ा;
 नवल पल्लवों के अञ्चल में-
 देखी कलिका की ब्रीड़ा ।
 प्रणय-भीख माँगते उपा से-
 तरुण अरुण को भी देखा:
 सन्ध्या-ममय सूर्य को देखा-
 दिन भर का करते लेखा ।
 दूर्वादल पर बिखरी देखी-
 रजनी की मौक्तिक माला;
 वन-उपवन में जाने अबतक-
 कितना क्या देखा भाला ?
 अमल धवल ज्योत्स्ना में देखी-
 द्रवित रजत सी पुष्करिणी;
 मानस में कल्पना सदृश-
 जल पर देखी चलती तरणी ।
 चन्द्र विरण सौरभ से सुन्दर-
 तरणी पर देखी नारी;
 जिसे समझ कर चन्द्र-
 चकोरों को होता था भ्रम भारी ।

कोमल पलकों में देखी -
 मानव-मन की मोहक कारा;
 विद्रुम के कूलों में देखी-
 बहती मधुमय रस धारा ।
 ऐँठ भरे जो रूप गर्विता के-
 सिर पर हैं रहने से;
 देखा और सजाया भी है-
 उन्हें कुसुम के गहने से ।
 देखी लटकी लट-ममेठने को
 जो स्मिति के फूल भरे:
 उसे पता क्या? उन फूलों का-
 प्रिय है अधर, न भूल करे ।
 गोल-गोल दो कनक-लताओं में-
 आलिङ्गन का संसार;
 अपने को विस्मृत कर मने-
 देखा है कितनी ही बार ।
 लहरों-सा लहराता यौवन
 सरिता से उज्ज्वल तन में:
 जाने कितनी बार देख कर-
 चकित हो चुका हूँ मन में ।
 भीने अवगुण्ठन में देखी-
 भू पर है शशि की भाँकी;
 देखा हृदय दृष्टि में रक्खा-
 और हृदय की छवि आँकी ।

देख लिया मैंने विलास का
 वस्ती का कोना कोना :
 देख लिये सब रत्न यहाँ के
 देख लिया चाँदी सोना ।
 भूल-भुलैया की दुनिया में -
 मैंने सब देखा भाला;
 किंतु शांत मित्रसकी न मुझको-
 बुझ न सकी पलभर ज्वाला ?
 किसके प्रणय-पाश में बँधकर
 अरे! यहाँ मैं क्यों आया ?
 क्या मिटने मरने के हित ही ?
 यह भी नहीं जान पाया ?
 बालू में खींची रेखा सा
 मिटा रहा क्यों काल बली !
 हमने उसका क्या छीना है !
 बस-बस रह अब दूर छली !
 दिन के शशि-से इस जगती के-
 दृश्य सभी फीके लगते;
 आज हृदय में रह रह कर है
 सोये हुये भाव जगते ।
 कितने घर में अधकार रख
 फैला है यह दिव्य प्रकाश !
 कितने दुखियों के आँसू पी
 पलता है मुक्ता सा हास !

कितने पेटोंको खाली रख-
 भरते हैं ये अन्नागार ?
 कितने सुख की आहवा है
 सुख का यह निष्ठुर संसार !
 भूखा शैशव यहाँ तडपता
 मातृ-हृदय दुख से रोता :
 यहाँ जन्म के साथ मृत्यु का-
 परिचय मानव से होता !
 ये गुलाब-से अन्धर यहाँ पर-
 खिलते हैं मुरझाने को !
 ये नीलम से मेघ यहाँ आते हैं
 अश्रु बहाने को ।
 यहाँ प्यार की कोकिल दो दिन-
 कक सुना उड़ जाती है;
 चीत्कार ध्वनि यहाँ समीरण की-
 कानों में आती है ।
 यहाँ किनारे रोक रहे हैं
 लहरें भी जासकी कहाँ ?
 कौन व्यथा उनकी सुनता है ?
 है कैसी बेबसी यहाँ ?
 यहाँ चन्द में काले धब्बे-
 और सूर्य में भीषण ताप :
 प्रथम प्रणय की दृष्टि यहाँ है-
 सारे जीवन का अभिशाप ।
 यह दुनिया क्या रहने लायक
 कैसे इसे बदल डालू ?
 कैसे अपना सब सुख देकर-
 जन-जन के दुख को पालू ?

कैसे मैं सम्पूर्ण सत्य के
 चिर रहस्य को खोल सकूँ।
 कैसे फूल फूल में प्रियतम का-
 मादक मधु घोल सकूँ।
 कैसे मैं समीर के सँग जा
 दे आऊँ घर-घर सन्देश;
 "यह प्रकाश है व्यर्थ, अगर है-
 मनु में अंधकार का लेश।
 आँसू शोक मूल्य जिसका है-
 वह आनंद व्यर्थ भाई।
 वह कैसा है मिलन कि जिसमें
 यह विच्छेद बना खाई।
 उफ़! उस दिन देखा था मैंने
 यौवन का विद्रूप महान;
 बूढ़ा-एक मार्ग में जाता -
 दुख से बाँझिल बना कमान।
 सोचा था-लम्बे अतीत के-
 दुख का बोझ न सका सँभालः
 इसीलिये यह कमर झुकाये-
 चलता है चौंटी की चाल।
 रूप, प्रेम, उन्माद चढ़े थे-
 या यौवन में जो उस पर,
 अब उतार कर फेंक रहा-
 यह दर उन्हें ही क्या झुककर!

कमा रहे होंगे इसके भी-
 अहो! तिमिर से काले केश!
 धारा यशोधरा का भी क्या
 एक दिवस होगा यह वेश!
 नहीं इसे मैं सह न सकूँगा-
 क्रूर नियति का यह उपहास;
 शैशव, यौवन, जरा अन्त में
 आ जाता है भट से नाश।
 अरे! मृतक भी देख चुका हैं-
 कर पत्थर का हृदय कड़ा;
 अबतक जो कुछ भी देखा है-
 वह सब दयनीय बड़ा।
 दिवस-रात्रि के दो पृष्ठों में
 है समाप्त जीवन-गाथा;
 क्या मैं इनसे ऊपर उठकर
 नहीं उठा सकता माथा!
 मैं ऐसा बसन्त खोजूँगा-
 जिसे न पतझड़ डरा सकें।
 मैं ऐसा प्रकाश लाऊँगा,
 जिसे न तम अहं हरा सके।

मैं निबन्ध पवन-सा खोलूँगा-
 जाकर मुकुलों के द्वार;
 और बताऊँगा कि तुम्हारी-
 मुराबि तुम्हीं में बिपि उदार!
 सावन की रिमकिम में मैं-
 बरसा दूँगा जीवन के गान;
 ज्योत्स्ना से इस धुले गगन में-
 टिक न सकेगा अब तूफान ।
 तो सबका कर त्याग--
 चलूँ उस परम सत्य में भेलकरूँ ।
 खेले खेल अनेक अभीतक
 आज अमर यह खेल करूँ ।
 'दर्शनीय' जो उसे देखलूँ,
 जो है 'प्राप्य, उसे पालूँ !'
 अमर हँसी हँस लूँ जीवन में
 भूला अमर गीत गालूँ ।
 पर यशोधरा के दुलारको
 कैसे हा! ठोकर मारूँ?
 जिसकी एक दृष्टि के ऊपर
 तन, मन, धन सब कुछ वारूँ ।
 मेरे हृदय कड़े हो जाओ!
 दुर्बलता को दूर करो!
 प्रियतम में है प्रिया-
 प्रिया में प्रियतम को भरपूर करो!

फिर न रहेंगे आँखें बन्दी
 फिर न रहेगा बन्दी तन,
 सुखी पत्ती-से न उड़ोगे
 इधर उधर फिर विकल विमन!
 देखो, हटा धूलि-अवगुण्ठन-
 भौंक उठी यह हरियाली;
 सचमुच प्रियतम के आने की
 उसने है आहट पाली ।
 आज नीड़ की विहग-बालिका भी-
 गाती मीठा गाना:
 उस पर भी तो प्रकट होगया-
 जीवन धन प्रिय का आना ।
 प्रियतम की छवि में विभोर हो-
 यह नभ भी जम गया यहाँ!
 जानें क्या जादू है प्रिय में-
 मुग्ध पवन थम गया यहाँ!
 फिर मानव होकर भी जो मैं-
 प्रिय को हाय! नहीं जानूँ!
 जीवन जन्म निरर्थक अपना-
 तो इस जगती में मानूँ!



इसीलिए-अब विदा!
 रंग-महलों के प्यारे प्यार विदा!
 मधु से भीठी मनुहारों के-
 कामलतम संसार विदा!
 विदा पिता, माता, गुरु, परिजन,
 सादर विदा दास-दासी ।
 हँसता कपिलवस्तु सी नगरी
 विदा! विदा उसके वासी ।
 मधुर विपश्ची की स्वर-लहरी-
 विदा! गीत की पीर विदा!
 पशु-पक्षियों विदा! हे कुसुमो!
 प्रिय सरिता के नीर विदा!

हिल मिल सभी मनाओं
 मंगलमय निष्क्रमण हमारा हो!
 सिद्ध अर्थ हों सभी-दुखी का-
 मेरी बाँह सहारा हो ।

x x x x x

धन्य धन्य कन्यक तुरंग,
 जिस पर चढ़ तुमने किया गमन ।
 धन्य-धन्य छन्दक, स्वामी की-
 सेवा की वह धन्य लगन !
 धन्य-धन्य वे क्षण, जब मन में-
 थे ऐसे विचार जागे-
 धन्य-धन्य वह हृदय कि जिसने
 जग के सब वैभव त्यागे!

गीत



बड़ी बुरी यह मजबूरी है—
जब न भुलाये कोई भूले !
जाने या अनजाने कोई—
जगा रहा इच्छाये सौई—
बार बार किसकी छवि आकर—
नरं इन नयनों में भूले !
बड़ी बुरी यह मजबूरी है ।

(२)

किसकी ये अदृश्य मृदु बाँहें—
जिनमें आलिङ्गन की चाहें—
बाँध रहीं हैं बढ़कर मुझ को—
में जाता हूँ सबकुछ भूले ।
बड़ी बुरी यह मजबूरी है ।

(३)

पवन संग किसका आकर्षण -
आकर करता है मधु वर्षण !
सखि ! किसके नयनों की लाली—
साँझ समय आ नभ में फूले !
बड़ी बुरी यह मजबूरी है ।

(४)

कोयल किसे पुकार रही है ?
लता सुमन निज वार रही है ।
उठ उठ कर यह लहर चाहती—
किसके प्रिय पद पङ्कज छूले
बड़ी बुरी यह मजबूरी है—
जब न भुलाये कोई भूले ।



चित्रकार से !



एक ओर हों
मणि मुक्ताओं के सुन्दर-से ढेर-
एक ओर हों-
नयन अश्रु के मोती रहे बिखर ।

मणि मुक्ता को भूल-
ओरे ! जो ले आँसू के मोती-
उसके लिये हृदय में-
कैसी सरस भावना होती !
चित्रकार तू ! उसी .

भावना को चित्रितकर आज ।

पनप उठे मानवता .
तो फिर चित्रकला के व्याप्त !



क्या क्या जगती में बना कौन?



आज एक है, किंतु दूसरे दिन प्यारा है जिन्हें अपर
काले मुँह वाले चञ्चल मन, वे ही बनते यहाँ धमर ।
अटल रहे जीवनसंगर-में नहीं जिन्होंने मानी हार
लहरें बन बेही गिर गिर कर फिर फिर उठते बारम्बार ।
अन्तस्तल में निहित जिन्हों ने रस के उत्स नहीं बाँटे-
उनके पास न कोई जाते वे ही कहलते काँटे ।
काँटों में घिर कर के जिनने रखी निज मुह की लाली
बेही बने गुलाब यहाँ पर शोभित करते हैं डाली ।
जो जन नीरस रहे भूलकर नहीं किसी के प्यार सने--
जीवन रहित मरुस्थल वे ही सूखे ज्वालागार बने ।
काले मेघ बने प्यारी की जो सूनी रखत बरसात
उनकी छाती में विद्युत की लौ जलती रहती दिनरात ।
जो थे मुखर बही निर्भर बन करते रहते हैं टलमल
पाप पुण्य ही बने यहाँ पर भीषण तम, प्रकाश उज्ज्वल ।
जो करते पद दलित किसी को अधिकारों से कर वञ्चित -
वे बनकर पथ-भ्रूल यहाँ पर पदाक्रान्त होते हैं नित ।
'प्रेम' शब्द कलुषित होता था जिनकी जिह्वा पर जाकर--
वे दुःख, शोक, ताप, जगती के भारी भार बने आकर ।



पत्थर की पुकार

“मैं क्या पत्थर जो दुःख न हो,,
या कहता मानव अभिमानी
जैसे करुणा उसकी ही हो—
पर नहीं जानता अज्ञानी—
मेरी छाती में चिपके हैं—
कितने करुणा के मृदुल भाव!
कितने दारुण दुःख के आँसू!
कितने जीवन के कटु अभाव!
कितनी स्मृति कितनी मौन व्यथा
मुझ में रह-रह कर बोल रही,
प्राचीन वृत्त का वह स्वरिणम-
सांभार्य पृष्ठ है खोल रही।
जब प्रथम-प्रथम ही देख रहे थे
आय उषा का मृदु आनन
जब प्रथम सामरव से गुञ्जित
पुलकित थे गिरि-गह्वर कानन।
मुझमें देखो अब भी मुद्रित
यद्यपि वे दृश्य विलीन हुये
मुझसे होगा ज्ञात तुम्हें
क्या थे अब कैसे हीन हुये।
धर्मस्तूपों पर लिखी हुई
मुझ में वह गौतम की नाणी
आओ! पढ़ जीवन शुद्ध करो
फिर धृति मति गति हो कल्याणी
पुरु का पौरुष उस अलक्ष्मन्द्र का
छिप कर के निशि में धावा
पढ़ लो! जिस से कर सको कि तुम
प्राचीन वीरता का दावा!
उन चन्द्रगुप्त की विश्व-प्रकट
वीरता लिखी मुझ में पढ़ लो!
फिर आओ! एकवार अपने—
उस गौरव के गिरि पर चढ़ लो!

षडलो अशोक के शिला लेख
 दुखियों का शोक दूर कर दो !
 एकात्म्य भाव से भूतल को-
 गुमनों के सौरभ सा भर दो !
 विक्रम के विक्रम का संवत्
 अङ्कित कर मैं अति पूत हुआः
 कब कहाँ नहीं मेरे द्वारा
 सृजनों का बश उद्भूत हुआ
 दिल्ली के वे ध्वंसावशेष
 गाते मेरी गौरव गाथा-
 अब भी विदेशियों का-
 जिनके सन्मुख झुकजाता हूँ माथा
 जयचन्द्र बीर के धन्वा की-
 सुनकर कनवज में टङ्कें-
 उस बीर महोबे में सुनकर-
 आलहा ऊदल की ललकॉरे-
 में होजाता था क्षार क्षार
 कंपती थी मेरी दीवारें ।
 जिन पर विजय-श्री बालि जाती-
 मैंने देखी थी वे हारे ।

राणा कुम्भाका जय स्तम्भ+
 वह वैभव का स्मारक विराट्
 खिल्जी की खिल्ली उड़ा रहा-
 दिखला निज गर्वोन्नत ललाट
 जाकर देखो चित्तौर दुर्ग
 पड़ा जा पत्थर पत्थर से !
 उठी अब भी हुंकार जहाँ-
 पृथ्वी से लेकर अम्बर से ।
 हैं रक्त लिखित उत्सर्ग काव्य
 वसा ही अब भी चमक रहा-
 उन सूर्य-वंशियों के गौरव का-
 मूर्धन्य वहां पर दमक रहा
 माहन जोड़ों हरप्पा में x
 द्रविड़ों की सुन्दर शिल्पकला-
 मेरे द्वारा ही उस युग की
 करती प्रस्तुत सँस्कृति विमला
 मेरे गत वैभव का प्रतीक-
 प्रस्तर युग कहलाया भूपर-
 फिर भी न कभी मैं इठलाया-
 अपनी इम महिमा के ऊपर ।
 एलोरा और अजन्ता में-
 मेरी गौरव गरिमा देखो !
 मंदिरों मस्जिदों में मेरी-
 मीनारों में महिमा देखो?

+ राणा कुम्भा ने मालवे के खिल्जी बादशाह को कैद कर कीर्ति-स्तम्भ का निर्माण किया था ।
 x सिंधु काँटे के मोहन-जोड़ों और पंजाब के हरप्पा की पुरातत्व सम्बन्धी खुदाई में प्राप्त
 अनेक प्रस्तर निर्मित कलाकृतियाँ तथा स्मारक अवशेषों से उस समय की सभ्यता का परिचय
 प्राप्त होता है ।

देखो जा मेरी तक्षशिला !
 जाओ देखो हल्दीघाटी !
 देखो प्रताप की छत्री जा-
 सीखो शूनों की परिपाटी !
 आगे किला के पास
 अमरकी अमर निशानी वह घोड़ा *
 मुझ से निर्मित जाकर देखो
 तो हर्ष नहीं होगा थाड़ा ।
 मुझ से ही निर्मित ताज महल
 जिसका न कहीं कोई सानी,
 हिन्दू मुस्लिम का भेद नहीं-
 मैं रखता हूँ, मैं हूँ ज्ञानी ।
 नर नारी अदभुत पत्र पुष्प-
 नव रसमय यौवन के विलास-
 नव नव गृह नव नव हाव भाव-
 नव शिल्प-कला के वर विकास ।
 मैंने सहेज कर रख छोड़े-
 कर सकी न जिनका वृष्टिनाश-
 आतप न सुखा पाया जिनकी
 आसका न जिनके पास हास ।

★ मुझमें भरने हैं उठल रहे
 पर नहीं भीगता एक वस्त्रः
 लगती न किसी के कहीं चोट-
 यद्यपि चलते हैं अस्त्र-शस्त्र ।
 शाखा मृग उठल कूद करत-
 पर शान्ति किसी की कब हरत?
 मुझ में अङ्कित कितने वन-पशु-
 पर वे किसकी खेती चरते?
 मुझ में उत्कीर्ण सुकावि सुन्दर-
 अंगुलियों में वीणा साधे;
 हैं मौन रागिनी बजा रहे
 दुख सुख के शत शत स्वर बाँधे-
 रागिनी न पलभर को रुकती
 नव बालयें हैं नृत्य लग्न -
 हरिणियाँ दूब चरतीं उनके ही-
 पास खड़े हैं हरिण मग्न ।
 वन-बाछा पुष्प चयन करके-
 फूलों की माला बना रही;
 प्रियतमा-पदों पर पड़ी कहीं-
 प्रियतम को अपने मना रही ।
 युग युग की सञ्चित निधि कितनी-
 मुझमें रक्षित हैं पड़ी हुई
 प्राचीर नगर के रक्षण में
 तत्पर हैं, मेरी खड़ी हुई ।
 मेरी ही स्फटिक-शिला-निर्मित -
 कितने सुन्दर हैं हाट घाट ।
 निनकी अपूर्व शोभा लखकर-
 क्षिति चूम रही नभ का लल्लाट ।

* श्री गजसिंह को पुत्र अमरसिंह ने भरे द्वार में सलावत को मारा था, और किले
 की प्राचीर से घोड़ा कुदा कर आत्मरक्षा की थी ।

मेरे ही कुलका तो गौरव-
 हिम-गिरि है विमल विभूति भरा,
 अरि का मर्दन जो मान करे-
 रक्षित जिससे यह दिव्य धरा !
 मेरे दयार्द्र उस से बहती-
 गंगा यमुना-सी धारायें,
 फिर भी पाषाण हृदय मुझ को-
 पाषाण हृदय ही बतलायें !

वर्षा-जल से शीतल होती
 गर्मी से जल उठती छोती,
 ज्वाला-मुखियों में है मेरी-
 अन्तर्ज्वाला ही लहराती ।
 निर्झर-पात्रों में जीवन रस-
 मैं ही हूँ नित्य ढेड़ल रहा,
 मेरे अंगों से ही कल-कल-
 बल-बल कर जल है खेवल रहा ।

मेरे पहाड़ गिर पड़ें कहीं !
 तो अरि को चूर-चूर कर दें ।
 उसका सारा अभिमान दर्प-
 वे षल में दूर धूर कर दें ।
 पर मुझे देखना है-देखें--
 करता क्या मानव अभिमानी-
 जो अपने को ही मान रहा-
 दुनिया में सब से लासानी ।

मेरी ही एक शिला में से—
 थी प्रकट हुई गौतम-नारी,
 मेरे द्वारा ही मिला सहज में
 रामचन्द्र को यश भारी ।
 मेरा गोवर्द्धन उठा-कृष्ण-
 कइलाये गोवर्द्धन धारी,
 फिर भी जड़-धाँ जड़ मुझे कहें—
 उनकी सुत्रुद्धि पर बलिहारी !!
 देवी देवों की मूर्ति बना—
 अर्चना सभी मेरी करते—
 हैं धूप, दीप नैवेद्य सभी
 मादर मेरे सन्मुख धरते ।
 मैं तुष्ट सहज में हो जाता—
 सबको सबका फल देता हूँ ।
 मैं भक्ति-भाव का ही भूखा—
 कुछ भी न किसी से लेता हूँ !
 जो बिछुड़ गये प्रेमी जिनका—
 दर्शन दुर्लभ है इस जग में,
 वे मुझ में चित्रित हैं देखो !
 आआ ! फिर चलो प्रेम मग में !

प्याला बन अधरों से लगता—
 पथ में बिछता मैं बार बार;
 मैं धन्य हुआ प्रियतम की ध्वनि
 अपनी इस प्रतिध्वनि में पुकार ।
 मेरा पत्थरपन बना रह—
 मैं नहीं 'फूल' होना चाहूँ ।
 पलभर को भी अपनेपन का
 गौरव न कभी खोना चाहूँ ।
 पिस कर जननी धरणी के ही—
 चरणों में मैं सांना चाहूँ !
 बस इतनी ही है साध—
 न मैं चाँदा चाहूँ-सोना चाहूँ ।

चित्र की चिन्ता

कितनी आशायें ल मन में जब कोई है सन्मुख आता -
 याचना-पूर्ण आँखों से वह जाने क्या क्या है कह जाता?
 दो स्मित अधरों से जब स्वागत पाने का मुझ से ललचाता
 तब देख मुझ निस्पन्द मूक वाणी-विहीन वह पछताता ।
 मेरी यह ममता हीन भुजा कब दीन दुखी की ओर उठी!
 मेरे मन में कब करुणा की पल भर भी एक हिलोर उठी!
 मैं रहा तरमता ही दुखियों का एक अश्रु कम कर न सका!
 दो बोल प्यार के कह कर मैं मुद्दों में फिर दम भर न सका!
 उन खाम उर्वण हृदय खण्डों से कभी नहीं भीगी छाती ?
 मैं कभी नहीं यह कह पाया "क्या तुम्हें न मेरी सुधि आती,,!
 मेरे अपाङ्ग-मण्डित लोचन मादकता कहाँ डेड़ल सके -
 मेरा हृत्त त्री से आकर गीतों के स्वर कब खेल सक ?
 उन कोमल हाथों को झूकर कण्ठाकत न मेरा गात हुआ -
 उनके विद्योह से कब मेरा जीवन रो रो बरसात हुआ ।
 मुझ कम्प हृदय में नहीं उठा सामन प्राण धन का पाकर -
 गालों पर लाली कब दौड़ी मधुमय आलिङ्गन में आकर!
 मुझ में स्पन्दन अनुभूत नहीं, तो फिर उच्च वास कहाँ होगा?
 मैं तो अपने से बिछुड़ गया ! जाने अब वास कहाँ होगा?
 बस इतना ही क्या कम गौरव प्रियतम की प्रातकृति कहलाता
 उनको अपने में बाँध रखा उनसे मेरा अटूट नाता ।
 हे अमिट सखे! मेरा चित्रण परिवर्तन का न मुझे भय है
 मैंने यौवन को स्थिरता दी मुझ में देखो वह अक्षय्य है!
 मुझ को व्यापार पसन्द नहीं-

जिसको अपनाया अपनाया !

यह क्या दर्पण सा जो आया-

उसको अपने में दिखलाया !

बस-अब इतनी ही चिन्ता है-

उन्माद प्रेम का घटे नहीं

जिनका हूँ उनके चरणों से-

पलभर जी मेरा हट नहीं" ।



सन्तोष



कोई मुझे प्यार करता है ।
सोच सुखी हूँ कितना मन में, कोई मुझे प्यार करता है ।
मेरी आँखों के पानी का मोल चुकाने वाला भी है—
मेरे इन रोते प्राणों का मधुर, हँसाने वाला भी है ।
मैं जिसकी छवि पर मरता हूँ वह भी तो मुझ पर मरता है ।
कोई मुझे प्यार करता है ।
मैं एकाकी हूँ न नग्न में, मेरा भी कोई अपना है—
मेरे भी मधुराकर्षण है, मेरा भी सुख का सपना है ।
मेरे मन में भी फूलों का सौरभ आ उमंग भरता है ।
कोई मुझे प्यार करता है ।
मेरे चारों ओर इन्हीं शब्दों का सुन्दर जाल तना है—
‘मैं हूँ उस के लिये और वह केवल मेरे लिए बना है ।
शत-रश्मियों से भूषण यह शशि भी नित्य लिखा करता है ।
कोई मुझे प्यार करता है ।
प्यार बने मेरे ये छोटे क्षण भी आज अनन्त बने हैं—
दुनिया जिनको पतझड़ कहती मेरे लिये बसन्त बने हैं ।
मेरे हित फूलों से प्रिय का प्रणय पराग सदा भरता है ।
कोई मुझे प्यार करता है ।
मैंने भी कल्पना-कुंज में एक मधुर-सा स्वर्ग बनाया—
उसमें मेरे प्राण, प्राण में रहने को चिर सुन्दर आया ।
अन्तर्वासी हो वह मेरे तेरेका अन्तर हरता है ।
कोई मुझे प्यार करता है ।



मिलन

स्वप्न में आओ मिलें हम !

क्रूर यह दुनिया कभी वैसे हमें मिलने न देगी-

मृख जायेगी कली, पर हाय! वह खिलने न देगी!

स्वप्न में०

चित्र में आओ मिलें हम !

कौन देखें राकता है, कौन है अपवाद करता!

देख कर के इस मिलन को कौन ईर्ष्या विकल मरता!

चित्र में० ।

चुम्बनों में भी मिलें हम !

चुमलेना आज पाटल फूल दक्षिण डाल वाला-

भूमता वह पी हमारे चुम्बनों की मधुर हाला ।

चुम्बनों में० ।

पवन के द्वारा मिलें हम!

पवन आयेगा तुम्हारे कुसुम कोमल अंग छूकर-

मैं मिटा लूँगा उसेही उर लगा के जलन क्षणभर ।

पवन के० ।

गीत में आओ मिलें हम!

हृदय अभिलाषा तुम्हारी गीत का धर भेष आती-

फूल उठती हर्ष से गाकर जिसे यह आज ब्रह्मी ।

गीत में० ।

तो चलो! शशि में मिलें हम!

पूर्णिमा का वह नवोदित चन्द्र है तुमको लुभाता-

देखतीं तुम, और मैं भी देख कर हूँ मोद पाता ।

तो-चलो० ।

उसी पूजा में मिलें हम ।

प्रेयसी चिर सुन्दरी है मानसी प्रतिमा तुम्हारी-

मानसी पूजा उसे ही नित्य है अर्पित हमारी ।

उसी पूजा० ।

कल्पना में ही मिलें हम !

कल्पना-के कुंज में तुम गूँथती हो फूल-माला-

भाग्य यह किसका! 'तुम्हारा' कह हृदय में हार डाला ।

कल्पना में० ।

क्यों न खोने में मिलें हम !

है तुम्हारी याद सच्ची और है सब विश्व सपना-

पा तुम्हें मैं खोगया हूँ, अब नहीं कुछ ज्ञान अपना ।

क्यों न०

प्रथम दर्शन

खोलने दो मधुर अवगुणन मुझे हे बाल !
अब न भिन्नको आज है यह प्रथम दर्शन काल !
कुसुम वन में मृदल उषा सी उठो तुम भाँक !
दर्शनाकुल अरुण से लोचन रहे हैं ताक !
लाज में सिमटी हुई पर होरहीं तुम मान
पूछती क्या आज अपने से कहो मैं कौन !
ला बता दूँ आज तुमको मैं तुम्हारा हाल--
खोलने दो मधुर अवगुणन मुझे हे बाल !

स्वप्न की छवि सत्य होकर के बसाये देश-
सुरभि-सा फैल वहाँ फिर प्रेम का आवेश ।
इन्द्र धनुषों के तन फिर मंजु वहाँ वितान
तुम वहाँ हों दामिनी की दीप्ति सी द्युतिमान ।
रूप यौवन से विनिर्मित है तुम्हारा वेश
स्वप्न की छवि सत्य हों करके बसाये देश ।

ज्वार प्राणों में दगों में है तुम्हारी प्यास
लालसा से स्फीत उर में है अमित उल्लास ।
हास में दिन, और केशों में छिपी है रात;
हिमकणों से भी सुखद शीतल तुम्हारी बात ।
जल-स्थल मधुमय सभी तुम से हुआ आकाश,
ज्वार प्राणों में दगों में है तुम्हारी प्यास ।

भलकते विद्रुमलता-से होंठ दानों लाल,
मधु भरे माणिक्य सम्पुट-से गुलाबी गाल ।
हंसिनी-सी मंजु मद. मन्थर तुम्हारी चाल,
कुसुम-कामल अंग साँचे में दिये ज्यों ढाल ।
चतर शिल्पी ने बनाया तम्हें खूब संभाल;
भलकते विद्रुम लता से होंठ दानों लाल ।

प्रथम रचकर सरसता मृदता किया अभ्यास-
तब बनाया रूप का विधि ने तुम्हें आवास
आज भिन्नक सा खड़ा यौवन तुम्हारे द्वार--
छवि दिखा दो! खोल दो पट सुन्दरी सुकुमार !
छवि तुम्हारी विश्व-छवि का कर उठे उपहास--
प्रथम रचकर सरसता मृदता किया अभ्यास ।

मुखर मञ्जुल नूपुरों से छेड़ नव संगीत—
 आज तुम मेरे हृदय को लो मृगेक्षणे ! जीत ।
 नवल पल्लव-सा हिलाकर मधुर अंचल-झोर—
 आज तुम प्रावृट-लता सी बढो मेरी ओर ।
 मैं तुम्हें लूँ बाँध तरु-सा प्रणय सस्मित भीत,
 मुखर मंजुल नूपुरों से छेड़ नव संगीत !

गूँथलो यह सुमन वेणी में हमारा आज !
 और रत्नाभूषणों के साज लो सब साज !
 वक्र नयनों से चलाबो वाण ग्रीवा मोड़—
 आज सखि ! तुम लाज के बन्धन सभी दो तोड़ !
 है हुन्ना पाकर तुम्हें ही धन्य ? यह रस-राज ।
 गूँथ लो ! यह सुमन वेणी में हमारा आज ।

अब न पद-नख से धरा पर लिखो अपना प्यार—
 सामने जब है तुम्हारे प्यार का आधार ।
 तुम अनावृत रूप अपने से सुधा दो घोल—
 और व्याकुल को सुना दो मधुर दो ही बोल !
 रुक गया नभ में सजनि ! तब देख शशि शृंगार—
 अब न पद-नख से धरा पर लिखो अपना प्यार !

छोड़ ब्रीड़ा आज होने दो दृगों को चार—
 रुक न कुछ इस से रहेगा विश्व का व्यापार ।
 मधुर कैसा हृदय का आदान और प्रदान—
 सुमुखि ! है इसका समय लो अब इसे तुम जान !
 सीख लो संसार में कहते किसे हैं प्यार !
 छोड़ ब्रीड़ा आज होने दो दृगों को चार !



हृदय के टुकड़े



तुम्हें भूल जाऊँ तो बेलो फिर मैं किसकी याद करूंगा ?
निराधार कैसे जीयूंगा ! नहीं ! नहीं ! मैं आज मरूंगा !
कितने सीधे सरल भाव से मैंने तुमको हृदय दिया था,
और मधुरतम मनुहारों से सरल तुम्हारा हृदय लिया था ।
सांच रहा था अभी अभी मैं कैसे मिलन अनन्त मनाऊँ !
कैसे तुम्हें प्राण में पाऊँ, कैसे मैं तेरा होजाऊँ !
पर इतने ही मैं ना जाने किसने यह तूफान उठाया—
चरण-चिह्न की तरह मिटाने मुझे ढूँढ़ता दुर्दिन आया ।
इन पीड़ित प्यासे प्राणों में ऐसा हाहाकार समाया—
मैं रोता ही रहा आँसुओं का किसने कब मोल चुकाया—
मेरे जीवन का वह सुन्दर क्षण जिसमें तुमने अपनाया—
कभी व्यतीत न होने आता, तो कितना होता सुखपाया !
पर ऐसा कब हुआ न विधि से यह सुख देखा गया हमारा—
आशा का तट छिन्न भिन्न कर छोड़ चली जीवन की धारा—
छोड़ चली उत्साह, उमंग छोड़ चले जीवन के सब सुख—
तुम्हें पूछ कर क्या करना अब, मैं हूँ, और मेरा परिचित दुख ।
नहीं, नहीं, तुम नहीं जानती मेरा अब जीवन है कैसा !
यों ही चलने दो जीवन को विपथ भाव से अन्धड़ जैसा ।
जबल तुम्हारा हुआ यहाँ तो प्राणों पर ही है बन आई—
सारी दुनिया छान चुका पर प्रेम नाम की वस्तु न पाई ।
यह सारी मतलब की दुनिया यहाँ प्यार की पूछ कहाँ है ?
यहाँ दगा विश्वास बना है, छिपा हास में रुदन यहाँ है !
मेरे मन के कोलाहल को आज कौन जानेगा सजनी !
मैं छटपटा रहा हूँ भीतर, बाहर शान्त मौन है रजनी ।

लाख प्रयत्न करूँ पर तो भी आज न मुझ से बोला जाता—
 मेरा सब कुछ चला गया है, अब मेरा जग से क्या नाता !
 मेरा भी सार्थक जीवन था, मेरा भी हँसता जीवन था,
 मेरे भी अरमान बड़े थे, मेरे भी मीठा-सा मन था ।
 मेरे भी आँखों में अमृत मादकता का बरस रहा था—
 एक एक पल तुमसे मिलने को जीवन का तरस रहा था ।
 कुछ मत पूछो अब मेरे जीवन की है कैसी हैरानी ।
 सुना नहीं जायेगा तुमसे रो देगी तुम सुनकर रानी ।
 सुना सुना-सा जीवन है मरघट की ही एक निशानी—
 आँखों में आँसू, आँसू में छिपी हुई है वही कहानी ।
 मैं तुमको कुछ सुख न दे सका ओ मेरी कोमलता प्यारी ।
 फिर कैसे यह हृदय न रोये ? हे ईश्वर ! कैसी लाचरी !
 मेरे जीवन पर युग युग से तुम करती आई हो शासन—
 मेरे हृदय-देश पर सुन्दरी ! सजा तुम्हारा ही है आसन
 तुमको मैंने प्यार किया था, प्यार कर रहा, प्यार करूँगा—
 अच्छा और बुरा जो कुछ है सभी तुम्हारे हाथ भरूँगा ।
 तुम्हें पूजना ही तो सुन्दर ! मेरा ईश्वर का पूजन है ।
 मैं तुम में ही घुल-मिल जाऊँ, बस इतनी ही एक लगन है ।
 प्रिये ! तुम्हारे मृदु चरणों को एक बार धोले ये आँसू—
 तो स्वर्गीय सुखों से मेरे जीवन को तोलें ये आँसू ।
 एकबार बस तुम्हें देखलें फिर सदैव को दृग मुंद जायें—
 तो अनन्त जीवन का समझो पुण्य यहीं ये भू पर पायें ।
 ओ मेरी संगिनि ! मानवता की हो तुम प्रतिमूर्ति दुलारी !
 कितनी सुन्दर ! कितनी भोली ! मैं तुम पर जाऊँ बलिहारी ।
 नारी हृदय विशाल तुम्हारा दया स्रोत उसमें बहता है —
 यह विराट् वैभव जगती का धन्य ! धन्य ! तुमको कहता है ।

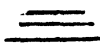
मधुमय वासन्ती-कानन की मैं न तान सुनना चाहूँगा—
 जलते जीवन की ज्वाला से यौवन में जलना चाहूँगा ।
 आज कुचल दूँगा निष्ठुर हाँ अपनी आशा की फुलवारी-
 सुला सदा के हित समाधि में दूँगा अपनी कविता प्यारी ।
 अब न रुकेंगे प्राण यहाँ ये सखि ! उस देश चले जायेंगे—
 जहाँ हताश प्रेम की तड़पन क्षणभर कुछ कमकर पायेंगे ।
 पर यदि वहाँ न शान्ति मिल सकी, तो फिर कौन उपाय करूँगा ।
 जबतक तुम न मिलोगी, जबतक योंही जीयूँ और मरूँगा ।
 क्या जाने किसने यह मेरे दिल में ऐसा आग लगादी !
 हाय ! सो रहा था मैं सुख से किसने मेरी प्यास जगादी !
 यदि ऐसा करना था तो फिर जी को हाय न तुम छूजाती-
 आँखों में न निमंत्रण देसीं, और न प्राणों में आ गाती ।
 पर अब मैं क्या करूँ ! कहाँ यह प्यास प्राण लिये डोलूँ मैं !
 नहीं सूझता हाय ! हृदय यह अब किसके सम्मुख खोलूँ मैं !
 उफ ! निर्मम तुमने यह कैसा मुझ पर अत्याचार किया है ?
 इतना भी न हृदय में सोचा तुमने मुझको प्यार किया है !
 तुम तो शैशव सी भोली थीं, और कुसुम-स कोमल मन था-
 आशाओं जैसी मीठी थी करुणा-सा निर्मल जीवन था ।
 फिर यह कैसे हुआ ? भाग्य ही का मेरे ऐसा विधान है-
 खिलता है जो फूल अन्त में होना पड़ता उसे म्लान है ।
 किंतु अभी तो खिल न सका था प्रेम फूल भी हाय ! हमारा-
 सुनते हैं क्या कान कि वह मिला गया धूल में है बेचारा ।
 क्यों न इसे सुनने के पहले कान सदा का बन्द होगये !
 क्यों न इसे पढ़ने के पहले नेत्र हमारे अन्ध होगये ।
 खूब जानती थीं तुम इसको प्रेम किए से क्या होता है ?
 जीते जी मिटना पड़ता है, हँसता दिल ही तो रोता है ।
 हाय ! प्रतीक्षा के भी कारण यदि होते हम कहीं तुम्हारे !
 तो थे प्राण खुशी से जाते, मरते नहीं व्यथा के मारे !
 सरक गई कितनी सन्ध्यायें जितने ही प्रभात हैं बीते ?
 एकबार भी नहीं भर सके पर मेरे मंगल घट रीते ।

एकबार भी बात किसी ने नहीं हृदय मेरे की परी-
 मेरे लिए जगत की आशा मुग मरीचिका सी है छूटी ।
 राम रोम मेरा रोता है, कैसा हो दिल विकल रहा है-
 प्रिये तुम्हारे मृदु अलकों में गुथने को मन मचल रहा है ।
 इच्छा थी तुमको अपना यह दर्द दिखा अपना कर लूँगा ।
 अपना दूँगा तुम्हें तु हारा प्यार और मैं जा भर लूँगा ।
 तुम रोवोगी तो मैं तुमको खूब मनाऊँगा रो रो कर -
 तुम्हें बना ही लूँगा अपना, सारा अपनापन खो-खोकर ।
 तुम यदि होगी उपल हृदय तो मैं पिघला लूँगा आँहों से -
 तुम होगी अनन्त की दूरी तो भी पहुँचूँगा राहों से ।
 कहीं न कहीं मिलो ही गी तुम तब तुमको सब बतलाऊँगा-
 जहाँ दर्द है मेरे दिल में उसी जगह को दिखलाऊँगा ।
 चौको नहीं तुम्हारा थोड़ा मयूर प्रेम का पा आश्वासन-
 फिर से हरा भरा हो सकता यूँ मेरा मुग्धायी जीवन ।
 फिर से मरण जनम बन सकता, फिर से स्वप्न सत्य होसकता -
 फिर से यह विषाद-तम मेरा प्रेयासि! तब मुखशशि धोसकता ।
 फिर से जीवन के वे सुन्दर क्षण क्षण भर में आसकत हैं-
 फिर से मीठी मीठी भूली सी मस्ती का पा सकत हैं ।
 फिर से हम उन्मुक्त लहरके-प्रेम सिंधु में चल सकते हैं-
 फिर से बाधा विघ्न विश्व के हम पल मेंहीं दल सकत हैं ।
 पर यह सब तुम पर निर्भर है चाहें जैसा बाले! करलो?
 चाहे मुझे तुम्हीं अपनालो! चाहे मुझे मृत्यु से वरलो?
 एक दिवस मैं जल वृदवृद सा विश्व सिंधु में खोजाऊँगा-
 जबतक जीता हूँ जीने दा! फिर न रुताने को आऊँगा
 मेरे करुण रुदन से बिहल तुम न कभी पल भर भी होना!
 मैं रोऊँगा, पर, तुम हंसना! मुझ भूल कर सुख से सोना!
 मैं पागल मेरी क्या हस्ती! मेरा सब मिथ्या सपना है-
 यह दुनिया दा दिन का मेला, कोई नहीं यहाँ अपना है ।
 उज्ज्वल दिन श्री, काली संध्या, पावन परम प्रीति में फूलीं-
 आस्र मिँचौनी खल रही हैं, या मुझ-सी ही हैं पथ-भूलीं?
 एक दूसरे के वे पहले निर्मम हाथ ! चली जाती हैं-

युग व्यतीत हांगयं, मिलन का मोद नहीं पलभर पाती हैं ।

यह सूना नभ भी तो मुझ से सचमुच अधिक भाग्यशाली है ।
 सन्ध्या का प्रिय राग प्राप्त कर, रह रह इठलाता आली है ।
 काँटों को भी फूल मिले हैं, और सुरभि फूलों ने पाई;
 पर वेदना मिली है मुझको, यह जग है कैसा अन्यायी ?
 एक शून्य-सा फल गया है, मैं उस में खोता जाता हूँ !
 गाने को तो मैं गाता हूँ, पर दिल से रोता जाता हूँ ।
 कितना चाहा किंतु किसीने हाथ ! न मुझको प्यार दिया है -
 इस दुनिया ने तो मुझ को बस रोने का उपहार दिया है ।
 कहीं किसी दिल में यदि रहना, तो मेरा दिल ही क्या खोटा !
 एकबार तो रह कर देखा, हाता नफा कि होता टोटा ?
 तुम्हें छोड़ कर जी न सकूँगा, मर न सकूँगा यह उलझन है ।
 दर्द-भरी आँसू आँहों का, मेरा यह दुखिया जीवन है ।
 तेरी प्रेममयी मुसकानों का बन्दी बन कर जीवन-धन !
 दुनिया से मैं मोड चुका हूँ, ताड़ चुका हूँ सारे बन्धन ।
 तुम मेरी हो यह कहना तो दर्प गिना जायगा भारी -
 मैं तेरा हूँ, इतना ही कहने का तो हूँ मैं अधिकारी ।
 अरी ! न रुठा ! ओ मेरी तुम ! क्या मैं इसको सह पाऊँगा !
 मर जाऊँगा किन्तु किसी पे दुख क्या यह मैं कह पाऊँगा !
 तुम मेरे जीवन में आई जैसे सुरभि फल में आती -
 तुम मेरे जीवन में आई जैसे दीपक में मृदु बाती -
 तुम मेरे जीवन में आई जैसे कोकिल स्वर में कूजन -
 तुम मेरे जीवन में आई जैसे निर्धन के घर में धन ।
 अब कितना ही तुम बहकाओ क्या तमको मैं भूल सकूँगा ?
 सच कहता हूँ पाकर तुमको काँटों में मैं फूल सकूँगा ।
 तुम न मिलो ! पर तुमसे मिलने की इच्छा से मिला रहूँ मैं -
 फूल घास का सही तुम्हारे दिव्य द्वार पर खिला रहूँ मैं ।
 आखें तुम में उलझ चुकी हैं, आँखों में आँसू उलझे हैं -
 तेरे मधुर रूप की उलझन में उलझे मन ही सुलझे हैं ।
 मेरे भी तो एक हृदय है, और हृदय में अभिलाषा है -
 तुमको पाकर के जीने की, मीठी-सी कितनी आशा है ।
 क्या जाने अन्तस्तल मेरा, कब से दुख पाता है भारी,
 वाणी में वेदना या कि है वाणी ही वेदना हमारी ।
 आँसू ही अक्षर बन बन कर आज पत्र पर बिखर पड़े हैं ।
 लो ! लँभाल कर रखलो इनको किसी हृदय के ये टुकड़े हैं ।

गीतिका



क्या करूँगा ले तुम्हारा प्राण-पीड़क प्यार !
हृदय की घड़कन यही कहतीं पुकार-पुकार !
क्या करूँगा ले तुम्हारा प्राण-पीड़क प्यार !
कुसुम-कोमल कह हृदय पर किया बज्र प्रहार !
हाय! हिम-शीतल बता कर रख दिया अँगार !
क्या०

नयन-खिड़की से हृदय पिघला बहा बहु बार—
पर न पीड़ा पा सकी प्रिय तव दया का द्वार ।
क्या०

आज मेरा नाम भी तुमको हुआ है भार—
आज मेरे हित तुम्हारा मर चुका है प्यार ।
क्या०

भूलते दुःस्वप्न सा मुझको समझ निस्सार—
दुःख न-यदि लेते कभी जो एकबार निहार !
क्या०

नित्य ही फूले फले तव प्यार का संसार !
क्या हुआ वञ्चित रहा मैं हाय ! सब कुछ हार !
क्या करूँगा ले तुम्हारा प्राण-पीड़क प्यार !!

न जाना मैंने क्या है प्यार ?



मेरा कुछ खोगया कहीं है -
पर उसका कुछ पता नहीं है -
कैसे यह खोया-सा जीवन ढोये जगती-भार ?
न जाना मैंने क्या है प्यार ?
अपना भी मैं आप नहीं हूँ -
नहीं जानता हूँ कि नहीं हूँ ?
मेरे जीवित रहने का क्या अर्थ न मैंने जाना ?
और कौन सुख शेष रहा है इस जीवन में पाना ?
मेरी ही क्या व्यथा खूगई ढलक उठा नीहार ?
न जाना मैंने क्या है प्यार ?
भावों का होता है नर्तन -
संस्मृति क्या है ? वह परिवर्तन ।
थके चरण-सा गिरता पड़ता हूँ उठता हर बार ।
न जाना मैंने क्या है प्यार ?



चलो बसायें नूतन दुनिया नूतन हों सब बातें ?



एक हँस रहा एक रो रहा, दुनिया, नाम इसी का —
कितने आये गये न अब तक कोई रहा किसी का ?
यहाँ मिलन के साथ विरह के पल भाँका करते हैं —
हँसी खुशी का मूल्य यहां आँसू आँका करते हैं ।
यहाँ तड़पता हृदय, यहाँ रोती रहती हैं चाहें —
यहाँ मोल आँसू बिकते, सस्ती हैं लेलो आहें !
जीवन की सुषमा के सपने यहाँ बिखर जाते हैं—
‘ प्रेम ’ जिसे कहते हैं कितने भाग्यवान पाते हैं !
प्रेम यहाँ तोला जाता है दुनिया के बाँटों से—
‘ मानवता ’ का मोल यहाँ होता शहीदों के ।
कौन यहाँ छुपचाप चढा किसके चरणों में जीवन—
कुहेरे-सा छिप गया न जाना जगती ने निर्दय बन ।
यहाँ सभी गृह-हीन समीरण से भटका करते हैं—
ये कागज के फूल व्यर्थ इन से अटका करते हैं ।
ताराओं-से अधिक यहाँ मानव मन की इच्छायें—
यहाँ बाँधती हैं जीवन को लघुता की सीमायें ।
काली रात हिंस्र पशुओं से यहाँ न उतना डर है—
जितना इस हिंसक मानव से डर छाया घर घर है ।
यहाँ और पीसे जाते हैं जो पिस रहे अभाग —
मानवता घायल रोती है दानवता के आगे ।
रवि के उदय अस्त में होता अस्त यहाँ जीवन है —
आशा की छलना में रहता फँसा अन्त तक मन है ।
यहाँ न समता और सरलता यहाँ कपट की घातें —
चलो ! बसायें नूतन दुनिया ! नूतन हों सब बातें !!



दिवस से !

विश्व-लोचन के पलक का

एक पतनोत्थान,

सृजन करता निशि दिवस क्या-

सत्य है यह ज्ञान !

खोल कर जाने कहाँ पर ?

कौन सा तुम द्वार ?

प्रकट होते हो प्रथम

कैसे कहाँ किस पार ?

धूप-छाया के पहिन कर

ये नवल परिधान,

नित्य आ जाते समय का-

रख हृदय में ध्यान-

शीत हो किम्बा भयानक-

ग्रीष्म का हो काल-

किन्तु कब होती तुम्हारी-

मन्द क्षण भर चाल ।

अन्य धारायें जगत की

बदलतीं निज रूप;

एक रस है पर तुम्हारा-

यह प्रवाह अनूप ।

अस्त्र-शस्त्रों से तुम्हें-

कब कौन सकता काट,

भूत में भी है भविष्यत् का-

तुम्हारा ठाट ।

गर्भ में क्या क्या तुम्हारे-

निहित नव-नव सृष्टि;

इन्द्र-धनु रञ्जित प्रकृति की-

सुभग शोभा-वृष्टि ।

सत्य शिव, सौन्दर्य अकथित-

ज्ञान के भण्डार-

हैं छिपे तुम में न कितने-

शान्त उच्च विचार ?

शान्त हो पथ में न तुम -

करते कहीं विश्राम-

पूर्ण जबतक हो न जाते हैं-

तुम्हारे काम ।

तुम्हें इस निन्दा प्रशंसा की-

नहीं कुछ चाह;

तुम किसी की भी कभी-

करते नहीं परवाह ।

है पथिक भग्नाश-
थोड़ी दूर पर है ग्राम-
किंतु तुम रुकते न,
करते समय पर सब काम ।

वह विदा वेला-

प्रिया के साश्रु गद्गद बोल-

श्रवण कर किसका हृदय-

दुख से न उठता डोल !

'आज दिन जाये न तो-

जाये न कल प्राणेश"

किंतु इस की क्या तुम्हें-

चिन्ता हुई भी लेश ?

रो रहा किसकी प्रतीक्षा में

पडा वह कौन !

किंतु तुम घटते न-

रहते मृत्यु ही से मौन !

तुम अलिप्त तुम्हें न है-

अणुमात्र इसका खेद-

शुभ अशुभ दिन व्यर्थ-

कह कर, करें लोग विभेद ।

मेघ से आच्छन्न हो-

लेते कभी दृग मीच;

कहाँ तक देखो जगत के-

कार्य कलुषित नीच ?

या कि भानु-प्रदीप का-

चुकता तभी है स्नेह ?

किंतु तुम निर्लिप्त—

यह सब व्यर्थ का सन्देह ।

समय का अन्धेर—

सब पर छोड़ता निज छाप,

शीत में होना पड़ा-

छोटा तुम्हें भी आण ।

भूल जाऊँ किस तरह-

बीते दिनों की याद ?

भूल जाऊँ किस तरह

वे नयन के सम्वाद ?

भूल जाऊँ किस तरह

वे हास्य, वे आह्लाद ?

मैं बँनू तुम-सा दिवस-

फिर हो न हर्ष विषाद ?

एक से बढ़ एक क्षण हैं—

दिवस के अनमोल ।

क्षणिक ही भू कम्प में है

विश्व उठता डोल ।

सावधान ! व्यतीत होता है-

दिवस यह आज !

देखता वह आज क्या

तुमने किए शुभ काज !

अब तरसते दृग न पायेंगे—

इसे फिर देख !

अब न इस से मिलन होगा-

कूर विधि की रेख ।

ओज से ही अन्य होंगे—

दिवस और नवीन,

आज की स्मृति किंतु यह-

सकता न कोई छीन !

श्म शान



मैं हूँ श्मशान ! मैं हूँ श्मशान !!

यौवन की मीठी दुनिया में, जो हिलमिल करते थे विहार,
जिनकी सांसों में सौरभ था, जिनकी आँखों में भरा प्यार ।
जिनके गोरे गालों पर आ ऊषा बन जाती थी गुलाब,
जिनके चुम्बन में तन्द्रा थी—जिनके छूने में थी शराब ।
जिनके होठों की लाली ले बालारुण यह होगया लाल —
जिनकी बातें सुनकर अबतक यह मौन मुग्ध है निशा काल ।
जिनके नूपुर की रुनफुन सुन, मच जाती थी उर में हलचल,
जिनका अञ्जल छूकर के ही यह पवन होगया था चञ्चल ।
जिनके स्वर में संगीत मधुर, जिनकी वाणी में था विनोद —
क्या बतलाऊँ ! उन सबने ही, आ-आकर मेरी भरी गोद ।
जब अन्त सभी ने दिया छोड़, तब मैंने उनको दिया स्थान ।

मैं हूँ श्मशान !!

मैं हूँ श्मशान !!

मेरी दुनिया ही अलग, अलग है जगती से मेरा विचार,
चाहे या ना चाहे कोई, मुझ से मिलते सब एकबार ।
वे बड़े-बड़े सम्राट शूर जिनसे वसुधा थी कम्पमान —
वे सेनानी जिनका लोहा था मान गया सारा जहान —
वे सुधी साधु जिनने अपने को सब प्रकार से लिया जान —
वे कवि जिनने सुन्दर को था कर दिया और सुन्दर महान् —
वे ज्ञानी जिनको चीजों की गहराई का था परम ज्ञान —
वे धनी जिन्हें अपने धन का सब से बढ़ कर के था गुमान —
सब आये मेरी शरण यहाँ—सबको ही मैंने दिया मान ।

मैं हूँ श्मशान !!

मैं हूँ श्मशान !!

मैं त्याग-मंत्र से हूँ दीक्षित—बस्ती से मेरा दूर वास,
 मैं योगी हूँ सब आश छोड़ रखता हूँ केवल भस्म पास ।
 यह भूठ जगत् का है कहना “ मुझ में रहता है महानाश ”
 है महानाश तो क्रूर काल, मैं तो सब का दासानुदास ।
 मैं तो सब की सेवा करता, सबका ही रहता मुझे ध्यान,
 मेरे समीप आकर दोनों हैं रक और राजा समान ।

मैं हूँ श्मशान !! मैं हूँ श्मशान !!

हैं छिपे राक्ष की ढेरी में कितने अपूर्ण अरमान यहाँ !
 निस्तब्ध निशा में सुन पड़ते पीड़ा के कितने गान यहाँ ।
 है नहीं पतन का ध्यान और उच्चाकांक्षा का मान यहाँ ।
 सोगया सदा की नींद अरे ! मानवता का अभिमान यहाँ ।
 अब उठ ओ मिट्टी के पुतले ! रे अन्ध वासना-नयन खोल !
 क्यों मौन पड़ा ? क्या रूठ गया ? यौवन का कुछ तो लगा मोल ।
 तू तो सत्ता का प्रतिनिधि है, तेरा तो है वैभव अतोल —
 जीवन दुर्लभ करदे जगमें—वाणी में ऐसा जहर धोल !
 पर यहाँ सबल मानव की भी चेतना गई है हार मान,
 मानव कितना दयनीय यहाँ ! कितना निष्ठुर विधिका विधान ।

मैं हूँ श्मशान ! मैं हूँ श्मशान !!

निर्जीव पड़ा मिट्टी शरीर मैं ही नजरो से उसे हटा —
 क्या नहीं मनुज का इस प्रकार देता हूँ दारुण दुःख घटा ?
 सब लोग चले जाते जब मैं इकला रह जाता सूनसान —
 सोचता यही अपने मन में दुनियाकी है फीकी दूकान ।
 यह रूप रंग ! यह गंध वर्ण !! दो ही दिन में चल दिये कहां ?
 सुन्दरता का परिणाम यही क्या यह मुट्ठी भर धूल यहाँ ?
 मृदलता तुल्य सुकुमार देह जो फूलों पर भी दुःख पाती —
 वह आज पड़ी मिट्टी बनकर उसको कुछ याद नहीं आती !
 यह सुन्दरता का वध कैसा ? जीवन निशि का कैसा विधान ? ”
 मेरे समीप आकर होता मानव को क्षणभर सत्य ज्ञान ।

मैं हूँ श्मशान !! मैं हूँ श्मशान !!

श्म शान



मैं हूँ श्मशान ! मैं हूँ श्मशान !!

यौवन की मीठी दुनिया में, जो हिलमिल करते थे विहार,
जिनकी सांसों में सौरभ था, जिनकी आँखों में भरा प्यार ।
जिनके गोरे गालों पर आ ऊषा बन जाती थी गुलाब,
जिनके चुम्बन में तन्द्रा थी जिनके छूने में थी शराब ।
जिनके होठों की लाली ले बालारुण यह होगया लाल —
जिनकी बातें सुनकर अबतक यह मौन मुग्ध है निशा काल ।
जिनके नूपुर की रुनभुन सुन, मच जाती थी उर में हलचल,
जिनका अञ्चल छूकर के ही यह पवन होगया था चञ्चल ।
जिनके स्वर में संगीत मधुर, जिनकी वाणी में था विनोद —
क्या बतलाऊँ ? उन सबने ही, आ-आकर मेरी भरी गोद ।
जब अन्त सभी ने दिया छोड़, तब मैंने उनको दिया स्थान ।

मैं हूँ श्मशान !!

मैं हूँ श्मशान !!

मेरी दुनिया ही अलग, अलग है जगती से मेरा विचार,
चाहे या ना चाहे कोई, मुझ से मिलते सब एकबार ।
वे बड़े-बड़े सम्राट शूर जिनसे वसुधा थी कम्पमान —
वे सेनानी जिनका लोहा था मान गया सारा जहान —
वे सुधी साधु जिनने अपने को सब प्रकार से लिया जान —
वे कवि जिनने सुन्दर को था कर दिया और सुन्दर महान् —
वे ज्ञानी जिनको चीजों की गहराई का था परम ज्ञान —
वे धनी जिन्हें अपने धन का सब से बड़ कर के था गुमान —
सब आये मेरी शरण यहाँ—सबको ही मैंने दिया मान ।

मैं हूँ श्मशान !!

मैं हूँ श्मशान !!

मैं त्याग-मंत्र से हूँ दीक्षित—बस्ती से मेरा दूर वास,
 मैं योगी हूँ सब आश छोड़ रखता हूँ केवल भस्म पास ।
 यह झूठ जगत् का है कहना “ मुझ में रहता है महानाश ”
 है महानाश तो क्रूर काल, मैं तो सब का दासानुदास ।
 मैं तो सब की सेवा करता, सबका ही रहता मुझे ध्यान,
 मेरे समीप आकर दोनों हैं रक और राजा समान ।

मैं हूँ श्मशान !! मैं हूँ श्मशान !!

हैं छिपे राख की ढेरी में कितने अपूर्ण अरमान यहाँ !
 निस्तब्ध निशा में सुन पड़ते पीड़ा के कितने गान यहाँ ।
 है नहीं पतन का ध्यान और उच्चाकांक्षा का मान यहाँ ।
 सोगया सदा की नींद अरे ! मानवता का अभिमान यहाँ ।
 अब उठ ओ मिट्टी के पुतले ! रे अन्ध वासना-नयन खोल !
 क्यों मौन पड़ा ? क्या रुठ गया ? यौवन का कुछ तो लगा मोल ।
 तू तो सत्ता का प्रतिनिधि है, तेरा तो है वैभव अतोल —
 जीवन दुर्लभ करदे जगमें—वाणी में ऐसा जहर घोल !
 पर यहाँ सबल मानव की भी चेतना गई है हार मान,
 मानव कितना दयनीय यहाँ ! कितना निष्ठुर विधिका विधान ।

मैं हूँ श्मशान ! मैं हूँ श्मशान !!

निर्जीव पड़ा मिट्टी शरीर मैं ही नजरो से उसे हटा —
 क्या नहीं मनुज का इस प्रकार देता हूँ दारुण दुःख घटा ?
 सब लोग चले जाते जब मैं इकला रह जाता सूनसान —
 सोचता यही अपने मन में दुनियाकी है फीकी दूकान ।
 यह रूप रंग ! यह गंध वर्ण !! दो ही दिन में चल दिये कहां ?
 सुन्दरता का परिणाम यही क्या यह मुट्ठी भर धूल यहाँ ?
 मृदुलता तुल्य सुकुमार देह जो फूलों पर भी दुःख पाती —
 वह आज पड़ी मिट्टी बनकर उसको कुछ याद नहीं आती !
 यह सुन्दरता का वध कैसा ! जीवन निशि का कैसा विधान ? ”
 मेरे समीप आकर होता मानव को क्षणभर सत्य ज्ञान ।

मैं हूँ श्मशान !! मैं हूँ श्मशान !!

मोती के दाने



- साधन:-** नित्य करूँ शृंगार न जाने कब मेरा प्रियतम आवे
कहीं देख कर मलिन न मुझको द्वार देश से फिर जावे !
- मेम:-** जिन पथ से प्रियतम आते हैं, उस पर है मेरा आकर्षण ।
रत्न-राशि से भी बढ़कर है, उसका एक एक लघु रजकण !
- वेरह:-** आहों के बादल छाये हैं, और आंसुओं का वर्णन है,
विद्युत्-सी पीड़ा उठती है - मेरा तो पावस क्षण क्षण है ।
- पाचना:-** ' मेरा सपना मिथ्या, मेरे आँसू भूठे, तुम यों न कहो !
मब कुछ लो मुझ से छीन किन्तु केवल तुम मेरे बने रहो !'
नयनों से रस बरसाते - अधरों से मधुर विहँसते !
सम्मुख तुम रहो हमारे - प्रियतम ! ऐसे ही बसते !!
- अभिज्ञता:-** दूर दूर तक शश्यावलि में वसुधा का पुलकोद्गम है ।
कैसे जान गई वह मेरा आता प्यारा प्रियतम है ?
- ज्ञान:-** दो चीज नहीं सौन्दर्य प्रेम, है जहाँ प्रेम सौन्दर्य वहीं-
है प्रेम हृदय का शुद्ध भाव, उस में छल का लवलेश नहीं !
- कारण:-** पावन प्रेम-स्मृति की बूँदें, आँखों से बाहर मत ढलकें !
इसीलिये तो कर लेता हूँ, बन्द प्रिये ! अपनी ये पलकें ।
- विवेचना:-** हर्ष डूबते हुये सूर्य की मृदु लाली है -
उसके पीछे छिपी शोक की निशि काली है ।
- धर्म:-** जिनके मुख पर क्लेश चिह्न हों, जो कोई हों दुखी कहीं पर -
तो तुम उन्हें प्रफुल्ल बनाना ! यही 'धर्म' है सबसे बढ़कर !!
- प्रश्न:-** प्रथम-प्रथम सुरसरि ने कैसे सागर की देखी थी राह ?
प्रथम मधुप के मन में कैसे पैदा हुई कमल की चाह ?
प्रथम-प्रथम कैसे फूटा था पत्रों में मर्मर संगीत ?
लता-अधर में फूल हँसी के प्रथम खिले थे कैसे मीत ?
स्वप्न-पंख पर उड़ कर कैसे प्रथम-प्रथम आई थी याद ?
प्रथम-प्रथम दर्शन से कैसे किससे हुआ प्रणय उन्माद ?

जी व न-गा न



मधुर गीत की
तरह हमारा
यह लघु जीवन !
सहज सरल
स्वर में समाप्त
होजावे भगवन् !
क्रम न कहीं हो
भंग, बिगड़ने
लय मत पावे !
श्रोता सुनें सहर्ष
समझ में
सबकी आवे ।



मिटने ही में जीवन देखा !



अरी मेघ सुन्दरी ! गगन में-
अपने बाल बिखेरे -
कैसे देखने को ऊँचे चढ़-
लगा रही हो फेरे ?
रह रह कर यह कैसा
विद्युद्बल्य चमक जाता है ?
या आँचल में दीप झिपा है-
वही दमक जाता है ?
मेरे ही उर-सी क्या तेरे-
उर में भी हलचल है !
मुझ-सा ही कर प्यार-
किसी-को ? क्या तू हुई विकल है ?
क्या कल्पना कुंज में
तेरा भी कोई प्रियतम है ?
रूठ गया वह नहीं मानता-
हाय ? इसी का गुम है !

आज तुम्हारा कष्ट देख
यह मेरा उर विद्रोही,
बोल उठा 'तैरा साजन है
उपलब्ध दय निर्मोही' !
तुम्हें छान कर चला गया जो -
नहीं आज तक आया -
परियों के द्वारा न गया हो
बेचारा बहकाया !
यह क्या ? तम तो
अश्रु गिराने लगीं जरा रुक जाओ ?
सह न सपत्नी भाव सकीं क्या ?
चल कर टोड़ लगाओ !
शायद भल गया हो पथ ही ?
वन में भटक गया हो ?
देख सृष्टि-मौन्दर्य कहीं मन -
उसका अटक गया हो ?

धोर गजना ओरे ! बात क्या
 मिथ्या मेरी मानी -
 तो रहने दो तुम्हीं सुनाओ !
 अपना करुण कहानी !
 " रावनें शुष्क किया था जिनको
 उन्हे हरा करती हैं -
 आत्म-दान कर सगिता
 सागर सभी भरा करती हैं -
 ब्रुत समय के बिछुड़े --
 मिलत नाद्यों से नाले हैं --
 मेरे मिटन से लाखों
 बनत जावन वाले हैं ।
 दीप नहीं अञ्चल में मेरे -
 यह प्रकाश की रेखा --
 इति से कहती है --
 मिटन ही में जावन देखा । "

तुमने मुझे नहीं पहिचाना ?



फूलों द्वारा मैं आता हूँ सम्मुख नित्य तुम्हारे —
रवि-किरणों में मैं बरसाता हेम तुम्हारे द्वारे ।
चारु चन्द्रिका बन छोड़ा करता हूँ रजत-फुहारे
पवन बना अञ्जल से खेला करता मैं मनमाना
तुमने मुझे नहीं पहिचाना ?

बन कर नव नीहार-बिन्दु मैं उत्कण्ठा से भर कर —
प्रेम तुम्हारा अङ्कित करता हूँ वसुधा के उर पर ।
तुम न जान पाते, हँसते हो मेरे क्षण-जीवन पर —
मैं पाता हूँ तृप्ति तुम्हारा देख मधुर मुसकाना ।
तुमने मुझे नहीं पहिचाना ?

तुम से मैंने कुछ कहना चाहा निर्भर के स्वर में —
फिर मैंने उसको दुहराया पत्रों के मर्मर में ।
पर तुमने कब सुना उसे क्षण भर भी निज अन्तर में —
मेरा रोना हुआ तुम्हारे लिये प्रकृति का गाना !
तुमने मुझे नहीं पहिचाना ?

सपने में थी कहीं तुम्हारी मैंने आहट पा ली —
तब से पथ पर बिछे नयन मेरे बनकर हरियाली ।
नहीं जानता तुम्हें पुकारूँ भियतम कह या आली ?
जब से हृदय नयन निर्मित हैं तुमको ही तो जाना ।
तुमने मुझे नहीं पहिचाना ?



तुम और मैं !



[१]

इन्दीवर के कलित कुञ्ज में ' सुरभि-पुञ्ज ' तुम खिलते हो !
प्रेमी भ्रमरों की गुञ्जन सुन ' हृदय खोल ' कर मिलते हो !
पर जब तुम्हें तोड़ आतुरता दर्शन की दिखलाता हूँ —
श्री-विहीन तुम होजाते हो, मैं भी फिर मुरझाता हूँ —
तुमको वहाँ न पाता हूँ !
तुम मुझको मत अपनाओ, पर मैं तुमको अपनाता हूँ ।

[२]

शून्य गगन के मध्य अहो ! तुम सुधा रूप से बसते हो —
शीतल करते सभी महीतल मंद मंद जब हँसते हो ।
पर जब तुम्हें देखने के हित टूटि वहाँ दौड़ाता हूँ —
संतत भार देख आशा का छोर छुटा-सा पाता हूँ ।
व्याकुल मुँह की खाता हूँ ! तुम०

[३]

प्रातः काल हिम-कण मिस मुक्ता बन कर के तुम आते हो —
झैल छबीला रुचिर रंगीला रम्य रूप दिखलाते हो ।
पर जब कर-स्पर्श करता हूँ तब अवाक रह जाता हूँ —
कहाँ गये हा ! यों कह कर के हाहाकार मचाता हूँ —
ढूँढ़ ढूँढ़ थक जाता हूँ ! तुम०

[४]

वर बसन्त में कोकिल बन तुम सुधा धार बरसाते हो —
सरसाते हो सुषमा को भी दुखित हृदय हरसाते हो ।
पर जब प्रेमालिङ्गन-हित मैं आगे बढ़कर आता हूँ —
उड़ जाते हो तुम झटपट मैं पागल-सा रह जाता हूँ —
सिर धुन धुन पछताता हूँ ।
तुम मुझको मत अपनाओ, पर मैं तुमको अपनाता हूँ ।

— —

कुणाल !

क

अपनी कृति से मानवता को व्यर्थ न कोई करता;
लहरों-सा उन्मुक्त विचरता किरणों सा तम हरता ।
एक दूसरे को अधरों सा हँसा हँसा कर हँसता;
था अशोक का राज्य शोक जिसमें न कहीं पर बसता ।
सुख-स्वप्नों के साथ यहाँ मारुत बहता था घर घर;
बाहर के ही साथ सभी देखा करते थे अन्दर ।
आशा अरुण यहाँ करता था नित्य हृदय-नभ रञ्जित;
ताप तप्त के लिए यहाँ था छाया सा सुख सञ्चित ।
हृदय रागिनी में सपने थे एक यही स्वर बजता;
‘ सत्य अहिंसा ही जीवन है—मानव की मानवता ’ ।
थी अशोक की पद्मा रानी जीवन की सार्थकता,
वाणी का प्रतिनिधि कवि भी उसके गुण गाकर थकता ।
उसका पत्र कुणाल पद्म लोचन था, लोचन तारा,
शिशु हास्य से अधिक सरल, विश्वास-अश्रु से प्यारा ।
बादल रहित स्वच्छ नभ सा मन, प्रातः-भानु-सा भास्वर,
बह प्रकाश का अग्रदूत था, अपर अशोक भरा पर ।

प्रेम-प्याम से भी मीठी थी उसकी मीठी बोली,
 ललित कलाओं ने उसके सम्मुख थी निज निधि खोली ।
 धन्वा था अपने धन्वा का केवल उसको बल था;
 वह निसर्ग में शुद्ध न सपने में भी उसका छल था ।
 कमलाक्षी कुणाल की पत्नी थी प्रिय काञ्चनमाला,
 सदा हृदय में जो रह कर के करती रही उजाला ।
 श्री बसन्त की उषा की शोभा सम्पूर्ण मिला दो,
 जीवन की मृदु सुधा छिड़क कर जो तम उसे जिला दो ।
 फिर भी दुर्लभ सती काव्रनां की-सी है सुन्दरता,
 मूर्तिमान स्वर्गीय भाव की वह थी दिव्य अमरता ।
 उप का ईषत् हास्य चौदनी जगमग-जगमग हाती,
 फूल लताओं में खिल उठते सीप उगलती मोती ।
 ललित लताओं के मिस भुक कर कोयल के मिस गाकर,
 पहन हरित परिधान प्रकृति भी उसे रिक्ताता आकर ।
 तक्षशिला अधिराज पितान उसे बनाया सुख में,
 कितनी धार मराहा सुत को था अपने श्री मुख से ।
 तिष्यरक्षिता थी अशोक की एक दूमरी रानी,
 नैश-कालिमा में भी उसकी काली बड़ी कहानी ।
 एक बार अपने कुणाल को अपने पाय बुलाकर —
 आधा हृदय नयन में भर कर आभे में मुमका कर ।
 बोली “ आओ ! चित्र देखलो मैंने नया बनाया,
 है मेरा श्रम सफल कहीं यह कुछ भी तुमको भाया ! ”

दिव्य देवधानी * सुरम्य थी उसमें गई दिखाई,
 जहाँ-पाक शासन के शामन की सुकीर्ति थी छाई ।
 एक ओर थी वैजयन्त × पर विजय-पताका उड़ती,
 एक ओर थी नन्दन वन में सुख-सुषमा सी जुड़ती ।
 चन्द्रोदय होनेवाला था किंतु प्रथम ही उस से,
 नन्दन वन होरहा प्रकाशित था यह कैसे ! किस से ?
 चन्द्रानना उर्वशी वासन्ती निकुंज में जाकर —
 फूल तोड़ती थी फूलों से कोमल हाथ बढ़ाकर ।
 इतने ही में देवराज आये निकुञ्ज में ऐसे —
 मधुर स्वप्न मस्तिष्क बीच धीरे से आये जैसे ।
 बोले, “ प्रिये ! सुधार दिया तुमने विधि की भूलों को —
 है कण्टकित कठोर डाल उपयुक्त न इन फूलों को —
 इनकी शोभा किसी कोमलाङ्गी के हार बने ये —
 किम्बा पृथु नितम्ब-चुम्बित केशों के भार बने ये —
 इतने पास-पास रह कर भी हाय ! न कभी मिले ये —
 कितने बार खिले पर सचमुच में क्या कभी खिले ये ?
 आज इन्हें तुम बाँध प्रियतमों ! एक ग्रन्थि-बन्धन में —
 उपजाती हो हर्ष साथ ही विधि के मेरे मन में । ”
 फिर अपाङ्ग-विस्तृत नयनों से सुधू ने समझाया —
 जैसे अपने सुख में शब्दों को साभी न बनाया ।
 मेरे हृदय-हृदय तुमही हो ! है यह माल्य तुम्हारी,
 रूप रंग इंगित से थी यह प्रकट भावना सारी ।
 चित्र देख कर के कुणाल ने कहा बड़ा सुन्दर है —
 इन भावों पर लिखी तुम्हारी कविता भी मनहर है ।

* देवधानी = इन्द्र की पुरी ।

× वैजयन्त = इन्द्र का किला ।

तिष्यरक्षिता ने तब अपनी भुजवल्हरियों वाली—
 गूँथी माल कुणाल के लिए किंनु रही वह खाली
 बोल उठा मानव कुणाल का मा ? यह कैसा बल है ?
 क्या मातृत्व कभी भी हो सकता इतना दुर्बल है !
 मा का हृदय हिमालय से भी ऊँचा, नभ से ऊँचा —
 तुच्छ स्वर्ग उसके सम्मुख है, वह है सब से ऊँचा ।
 जहाँ स्नेह विगलित करुणा है—हृदय वहीं माता का —
 चलता फिरता स्वर्ग घरा पर एक यही धाता का ।
 है पूर्णत्व बिलसता जिस में और मृदुलता पलती —
 वह पवित्र मा की गोदी है, छलना जिसे न छलती ।
 फिर क्यों धरती नहीं फट गई ? तब भी हाय ! न टूटा —
 जब ऐसे कलुषित विचार ने पुण्य हृदय का लूटा ?
 पूत प्रेम की आयु क्यों न होगई समाप्त उसी क्षण !
 क्यों न अग्नि स्फुलिङ्ग बनें बरमे भू पर तारक गण !
 मनु आत्मा को छोड़ कौन पशु तुम में बैठा आकर —
 जो यों विकल दहाड़ रहा सब शस्य सुकृत का खाकर !
 बोली तिष्यरक्षिता “ दुनिया में कठार क्यों कोड़ !
 प्रेमिक हृदय बनाकर क्यों यह बेलि व्यथा की बोई ?
 इन छोटे प्राणों में कितनी मित्यन भावना भरदी ?
 किसने छीन लिया क्या मेरा ? क्यों ऐसी गति कर दी ?

जहाँ हृदय मानता पराजय निश्चय स्वर्ग वहीं है —
 अधिक सिंधु जल से शुभ मुख का अचि अपवर्ग वहीं है ।
 पूर्ण चंद्र के लिए हृदय सागर न कर फैलाये —
 चन्द्र न मिला विम्ब को भी बादल जा रहे िपाये ?
 यदि सकती कुछ बोज निराशा ता कड़ता दुख मेरा —
 जा ! जा ! ' तू देख लूँगी मैं छानूँगी मुख तेरा ।
 देखा प्यार ! घृणा भी अब तू देख विकट नारी की !
 कृपण नहीं होती कठारता दर्गिज मुकुमारी की !
 नारी में आनंद दृश उठती उत्कट आम बाषा —
 किन्तु हृदय सा शीघ्र बँठती जब हो उसे निराशा ” ।
 मा को किया प्रणाम झटारत वे तश्चाशेला का आये —
 मानव क्या ! जड़ प्रकृति जहा था स्वागत साज सजाये ।
 पृथ्वी से फूलों क मिस मे फूटे सुरभि-फुहार —
 लहरें भी मालाए सजकर लाई शांघ्र किनार ।
 पल्लव ताली बजा-बजा कर तरु थे मोद मनाते —
 नगर निवासी भर उमंग में फले नहीं समते ।
 पर चुपचाप कणाल पधार अपने अन्तःपुर में —
 जहाँ काञ्चना वाणा ले कर गाती थी मृदु स्वर में —

(१)

“ तब मुश्किल कितनी बढ़ जाती —

जब वे मेरे सम्मुख आते ?

मेरा स्वर्ग सामने आता —

मेरा स्वप्न सत्य बन जाता,

आत्मा का संगीत सुनाता ।

हृदय मिलन के हित अकुलाता —

पर ये लाज भर सखि ! मेरे दृग दोनों नीचे झुक जाते ।

तब मुश्किल कितनी •

(२)

अञ्जल का वे छोर पकड़ कर —
पावन परम प्रेम में भर कर —
कहते हैं देखा ! यह भू पर —
प्रिय ! इन्दु का उदय मनोहर —
जब तक चकित उसे मैं देखूँ वे बढ़कर निज हृदय लगाते ।
तब मुश्किल कितनी०

(३)

मेरा चित्रक हाथ में छूकर —
और उठा कर मुख कुछ ऊपर —
कहते चन्द्र उदय यह भू पर —
जिम से दुख तम भाग डर कर —
यह भी क्या शाश ! जिस के रहते नभ तुम हो सने कहलाते ,
तब मुश्किल कितनी०

(४)

मिमिट लाज में मैं गड जाती —
बड़ी विपद में मैं पड जाती —
मैंह से काइ बात न अती —
धन धन कर्म लगती छाती —
जाने इस अभागिनी का व क्या क्या कैसा ह बतलाते !
तब मुश्किल कितनी०

कुछ रुक कर कुणाल ने कर के गीत-सुधा का पान—
बोले इस नव रचना पर है मुझको हर्ष महान !

× × × ×

नयन की किरणें मिलीं बोलीं मधुर रस-बोल—
श्रवण सुन पाते न, सुनता हृदय निज श्रुति खोल,
झपक कर पलकें प्रिया की द उठीं सन्देश—
प्रणय आलिङ्गन तुम्हें स्वीकार हो हृदयेश !

× × × ×

गूँथा हुआ यह जीवन मेरा विपर्यस्त-सा लगता—
आज मानसिक क्रान्ति बहुत है भाव न कोई जगता ।
मेरे मन की नवल माधुरी आज न नभ को रँगती —
मेरी भावकता मुझको ही है पग-पग पर ठगती ।
इस ने कोई मधुर गीतिका अपनी और सुनाओ !
बस मेरा इतना ही कहना—गाओ ! गाओ !! गाओ !!!
काज्जनमाला बीणा लेकर शीघ्र लगी फिर गाने —
मुर गीतिका द्वारा अपने प्रिय की श्रान्ति मिटाने —

(१)

आओ प्यारे ! जी भर हँसलें !

जाने कब फिर हँसना होगा !

जीवन एक अनवरत रोदन

बूँद बूँद कर रोता है घन

आस अश्रु के गिरा रही कण —

बड़े भाग्य से पाया यह क्षण —

यदि इस अवसर पर भी चूके तो संकट में फँसना होगा !

आओ प्यार ! जी भर हँसलें !

(२)

दुनिया हँसता फूल तोड़ती —

अमा चान्द्रिका को न छोड़ती —

नीरसता सब रस निचोड़ती —

विस्मृति सुस्मृति धन न जोड़ती

दुःख को एक बनाकर साथी अब कांटों में बसना होगा !

आओ प्यारे !

आओ ! हम अधरों-सा मिल लें !
 आओ ! हम फूलों-सा खिल लें !
 आओ ! हम लहरों-सा गालें !
 आओ ! क्षण भर मौज मना लें !

क्या जानें फिर किस काल-स कठिन गर्त में धसना होगा !
 क्या जान फिर किस फन्दे में अपना सब कुछ कसना होगा !
 आओ प्यारे ! जी भर हँस लें ?

ख

ज्योत्स्नांशुक को पहन निशारानी धीरे से आई,
 अपने माथ न जाने कितनी मिलन-भावना लाई !
 तिष्यरक्षिता सोच रही था देख-देख तारों को —
 क्या जाने ये पढ़ न रहे हों मेरे उद्गारों को ?
 चमक रहे क्या गर्व भर ये शून्य हारकों से भर ?
 क्या सोचा करते हैं नभ में रात रात ये जग कर !
 अंधकार को भेद न जानें क्या रहस्य बतलाते —
 किन अतीत सपनों का अलम उलट-पुलट दिखलाते ?
 प्रेम परचय से भरा इन्हें भी यह जग लगता प्यारा —
 इसी लिए तो नित्य यहा आता है कोई तारा ?
 पर क्या इतनी दूर यहा आने में श्रान्ति न होती —
 इसे जानने की यदि कोई युक्ति कहीं पर होती ?
 तो मैं उसे सीखती निश्चय और पृथ्वी जाकर —
 बोलो क्या पाया इतने ऊँचे मे नीचे आकर ?
 अच्छा होता तुम ऊपर ही रहकर हँसते रहते —
 इतनी दूर यहा आने की व्यर्थ न साँसत सहते ?
 किंतु हाय ! यह व्यर्थ कल्पना यद्यपि है अति मनहर —
 भाव-जगत् से वस्तु-जगत् में रहा, रहेगा अंतर ?

कितना है सौन्दर्य संकुलित पर कब है मिल पाता —
 आँखें इन्हें देख भर सकतीं, बस इतना ही नाता ।
 जगती में जा चाहे जितना उतना कब है मिलता —
 यदि मिलता तो सकल सुखों का स्वर्ग धरा पर खिलता ।
 मैंने ही चाहा था निष्ठुर किन्तु मिला कब मेरा —
 बात गये कितने दसन्त पर सुन खिला कब मेरा !
 सूर्य नहीं जानता कि उसकी किरणें जा उपवन में —
 कौन कौन सा फूल खिलातीं ? कहाँ-कहाँ ? किस क्षण में ?
 अन्य फूल जानें न किन्तु पद्मिनी जानती इसको —
 उसे खिलाता वही देख कर जाती है वह जिसको ।
 मैं जिस से खिलती हूँ वह भी नहीं जानता इस को —
 यह मेरा ही दोष और मैं दोष भला दूँ किसको ?
 हा ! मेरे मन का आकर्षण ! निष्ठुर अति निष्ठुर है !
 कठिनोपल या अश्मसार से निर्मित उसका उर है ।
 जिसने गंधर्वाण फूलों को भू पर है उपजाया —
 उस विधि के अनिष्ट हाथों से ही वह गया बनाया —
 तभी हृदय इतना कठोर है, मृदुल शरीर कुसुम-सा
 पर इतनी है दया कि उसका ध्यान न निष्ठुर उस-सा
 वह न कभी आता पर उसका ध्यान सदा आता है —
 आँखों का न सही, पर मनको तो धीरज लाता है ।
 नहीं प्राणपथी यह कबके तनु-पिंजर तज जाते —
 इतने में आ कहा मस्ती ने प्राणनाथ है आने ।
 अपने में ही तटव्यगृहिता भूल सभी सपने को —
 स्वागतार्थ होगई समुच्चर स्त्री नया रचने को ।
 मनके निकट पहुँच कर बोली क्या बाणा ल आऊँ ?
 आज्ञा हा तो प्राणनाथ का गीत नवीन सुनाऊँ ?

“ मेरी मधुर गीति तुम हो ! तुम से रसवती रसा है —
 भरा नयन प्यालों में मादक कितना प्रिये ! नशा है ?
 कितना बड़ा प्रलोभन तम हो इस अशोक के मन को —
 रण में शस्त्र और गृह में तुम दो ही आलिङ्गन को ?
 इच्छा होती आज प्रिये ! मैं तुम्हें हृदय में रख लू ?
 नयनों में मैं तुम्हें िपाल और पलकों से ढक लूँ ! ”

“ यह लो ! मैं ही नहीं होगये तुम भी कवि अब स्वामी —
 प्रभु को कवि को, कवि को प्रभु को बारम्बार नमामी ”

“ तो कवयित्री आज मुनाओ कवि का नूतन रचना —
 सावधान ! कविता के दापों से कवि सम्मुख बचना ” !

“ रुठ गई मुसकान न आती ?

तुम्हीं नहीं रुठे जीवन धन, दुनिया मुझ से रुठी जाती ।

रुठ गई मुसकान न आती ?

अब फूलों में भी पहले-सी चहल पहल कब है दिखलाती -

अब न यहाँ पर वह मीठी सी मधुरों की बाँसुरी सुनाता

रुठ गई मुसकान न आती ।

मैं कितनी आशा लेकर के दपण के सम्मुख हूँ जाती —

प्रियतम की वह रूप माधुरी देखूँगा, पर देख न पाती ।

रुठ गई मुसकान न आती ।

सरिता से जा पूछा करती तू तो सजनि ? दूर से आती

देखे कहीं हृदय धन मेरे ? वह टट्टी मुँह तक न घुमाती

रुठ गई मुसकान न आती । ”

* * * *

“ विरथ के मृग की थकान -
 बन जाऊँ हाँ न सबरा -
 जिस से प्रणया युगल न बिछुड़ें,
 यह चाह मन मेरा
 उस अमुन्दरी के होठों का -
 मधुर हास बन जाऊँ -
 रूठा हुआ मनाऊँ उस का -
 प्रियतम तो सुख पाऊँ ?
 इस अनन्त अम्बुधि में -
 जो हाँ डूब रहा बेचारा -
 तो मैं उसके लिये बनूँ आशामय —
 एक — किनारा
 जीवन का रस टुक चुका हो —
 जो हो सूना सूना -
 तो मैं उसके लिये बनूँ -
 जीवन का एक नमूना । ”

* * *

प्रिये ! तू है आज तुम्हारी इच्छा हो सो लेलो !
 रस के उत्स उडेल सदा प्राणों में यों ही खेलो ! ”
 ‘ अच्छा तो सम्राट् ! प्राप्य वर दे दो मुझ को मेरा । ’
 ‘ हाँ-हाँ कृत उपकार प्रिये ! वह भूला है कब तूरा -
 जब मैं था मुमूर्षु तब तुमने निज अञ्चल को छाया -
 देकर मुझे जिलाया, जा सकता कब इसे भुलाया -
 इसीलिये तो तुमका तुमसे अधिक प्यार करता मैं -
 सिंहासन क्या ? प्राण दान से भा न कभी डरता मैं । ”
 नृप-आज्ञा से नारी - अधिकृत हुआ मौर्य सिंहासन -
 वह नारी जिसके मन में था कूट नीतिका शासन !
 वह नारी जो अपने अमृत में विष मिला चुकी थी -
 वह नारी जो पुण्य वृक्ष की जड़ को हिला चुकी थी ।
 नृप-मुद्रा से मुद्रित यह लिख भजा मेनाधिप को -
 नेत्र निकाल शीघ्र निर्वासित करो कुणाल महिष को ”
 हा ! हा !! ऐसा करते करते उसको मौत न आई -
 भाषा भी न दे गई घोका ! कलम न कुछ शरमाई ?
 स्याही तो खुद ही काली थी उस से क्या आशा थी -
 जीवन ही जब नहीं, व्यर्थ तब सब कृत्रिम आशा थी ! ।

ग

आज्ञा जान कुशल पिता की बात ऐसी वाणी —
 मैं हूँ धन्य ! धन्यतम यह जीवन देता कल्याणी ।
 प्रेम त्याग है, त्याग प्रेम है, दृश्य सभी माया है,
 शूरो के ही लिए एक सी बनी मृप छाया है ।
 दुख सुख जीवन मरण, ज्योति कालिमा द्वंद्व ये जग के —
 किंतु सहायक ये अनंत हैं कर्मवीर के मा के ।
 जिस में सुख उस से ही दुख भी है मानव को होता
 एक वस्तु में ही सुख दुख दोनों का बहता सोता ।
 जो नभ है हीरक बिखेरता वही उपल बरसाता —
 शीतल सुखद समीर उग्र ऋघट भी तो बन जाता ।
 मानव ही दानव, दानव भी मानव है हो जाता —
 मात्र स्थिति का भेद, यही मेरा विवेक बतलाता ।
 एकबार चाहा हंगा मानव ने यह भव बन्धन —
 क्यों सदैव के लिए गया उसका स्वभाव फिर यह बन ।
 बही एक है प्रश्न चिरन्तन जो मेरे सम्मुख है —
 आज कर्म द्वारा उत्तर दूँगा मुझ के यह सुख है ।

आवर्तन प्रत्यावर्तन का नाम यहाँ जीवन है --
 बड़े भाग्य से आज कर्म का आया मेरे क्षण है ।
 क्रूर विधाता का कोई इसको परिहास कहेगा --
 किन्तु अन्ततक मैं सच्चा हूँ -- यह इतिहास कहेगा ।
 आँखों की हो दृष्टि, और हो मनकी दृष्टि न उज्ज्वल --
 तो कहता है ज्ञान यही उसका जीवन है निष्फल ।
 मेरे नयनों ने अबतक जगती को जितना देखा --
 कवि की चुंद्र लेखना क्या उसका कर सकती लेखा ?
 अब अन्दर का आज देखने का अवसर है आया --
 तो मैं चर्म-चक्षुओं की कैसे न त्याग दं माया ?
 मैं कहता था नित्य काञ्चना की आँखों से जग को --
 देखूँ और प्रशस्त करूँ जीवन के दुष्कर मग को ?
 काञ्चन और कुणाल साथही साथ जगत को देखें --
 सौभाग्य से आज वही आया अवसर सब देखें ।
 दो हृदयों का एक हृदय कर नयन चार होते हैं --
 बीज बञ्चना का जगती में एक यही बोते हैं ।
 जितने में कल्याण, अधिक ये उस में देखा करते --
 कर के टेढ़ी दृष्टि भूरि भय का ये लखा करते ।

* * * * *

शक्तिशालियों के लज्जित करने को दुर्बल जन है --
 और आँखवालों के हित अंधों का हुआ सृजन है ।

जिस से गर्व न करे कहीं कोई इस भूतल भर में -
 ऐसा ही विधान है प्रभु का सोच यही पल भर में ।
 कहा काञ्चना से तुम आओ जी भर तुम्हें निहारूँ ?
 तन-मन धन तो वार चुका ? अब आज कहो क्या वारूँ ?
 रोती हुई काञ्चना आई जीवन से मुँह माडे -
 टूट हुये तार वीणा के और अधिक तर तोड़े ।
 “ पहले मेरे दृग निकाल ला तब तुम स्वयं निकालो !
 पितृ-धर्म के साथ धर्म पत्नी के प्रति भी पालो ! ”
 समझाया कुणाल ने कैसे फिर हम जी पावेंगे -
 निस्संबल जीवन लेकर के कहो कहां जावेंगे ?
 एक तुम्हीं पाथेय तुम्हारा ही तो एक सहारा -
 नेत्र निकाल दिये नत्रों से फूटा रक्त-फुहारा
 मानो चला रक्त जगती में लिखने पुण्य-कथा को -
 जिसे न काल मिटा सकता है ऐसी अमर व्यथा को ।
 कमल नयन की देख दुर्दशा अस्त होगया रवि भी -
 करुणा भी रो उठी रो उठा वाचक है बह कवि भी ।
 मूर्च्छा से काञ्चना जगी तो ले कुणाल ने झेली -
 कहा चलो अब शीघ्र यहाँ से होनी थी सो होली ।
 हाथ पकड़ कर के कुणाल का सती चली वह ऐसे -
 सुखदात्री शुचि सुरभि सुमन को साथ ले चले जैसे ।
 गिरि कानन जनपद कितने ही नग्न चरण व डाले -
 एक दिवस भर स्नह करुण में प्रिय कुणाल यों बोले -
 “ सकल अश्रुओं से मुझ को थे प्रेम अश्रु ही प्यारे -
 पर अब उन्हें देखने को हैं नयन निराश हमारे ।
 इन्द्र धनुष के हार पहन कर जब बादल आवेंगे -
 तरस-तरस कर तब क्या ये मन प्राण न रह जावेंगे ? ”

सुनकर ऐसे करुण-भाव काज्जना लगी यों कहने -
 जैसे करुणा स्वयं लगी हो शब्दों के मिस बहने ।
 “ मेरे मन के प्रणय विहारी ! तुम कातर मत होओ !
 क्षणिक दृश्य के लिए न जीवन भर का धीरज खोओ !
 सुख के लिए दुःख का देना मूल्य सदा पड़ता है -
 नव पल्लव कटता है जब यह जीर्ण पत्र झड़ता है ।
 पाप पुण्य का परस्पर दुःख है एक कसौटी सुख की
 मैं क्या जानूँ अज्ञ ? युक्ति यह भाव भरी श्री मुख की
 यों ही एक दिवस वे दोनों नियति चक्र से चालत -
 पाटलिपुत्र गये जो था अशोक से लालित पालित !
 हो कर में वल्लर्का मधु-मुर गीत लगे वे गाने -
 रुक्त वेदना या अशोक के मन की लगे जगाने ?

(१)

“ विधे ! तेरा क्या बिगड़ता ?
 यदि न दुःख लाता धरा पर -
 यदि न करता विरह-कातर
 तो बतादे कौन सा अभिशाप -
 तरे शीश पड़ता ?
 विधे ! तेरा क्या बिगड़ता ?

(२)

रूप में ऐसा प्रलाभन !
 था तुझ देना न शोभन !
 यदि दिया था ता किसी के भी -
 दृगों में वह न गड़ता ।
 विधे ! तेरा क्या बिगड़ता ?

(३)

प्यार की सीमा कहाँ तक ?
 क्यों न बतलाया यहाँ तक !
 अधिकता के सिर न जिस से -
 न्यूनता का दोष मढ़ता !
 विधे ! तेरा क्या बिगड़ता ?

(४)

शून्य नभ का अंक क्यों है ?

अचल चन्द्र कलंक क्यों है ?

“ क्यों बनाया अचिर मुझ को ”

कह यही यौवन भगड़ता ?

विधे ! तेरा क्या बिगड़ता ?

(५)

यदि तुझे कुछ ज्ञान होता ?

यदि तुझे कुछ ध्यान होता !

तो न प्रिय-पद तुल्य पकज —

नीच कीचड़ बीच सड़ता ।

विधे ! तेरा क्या बिगड़ता ?

(६)

है जहाँ रस-धार बहती —

तृप्ति चारों ओर रहती —

बही उठती डाट-सा —

जीवन हमारा क्यों उजड़ता !

विधे ! तेरा क्या बिगड़ता !

x

x

x

शत वृश्चिक दशन की पीडा एक साथ जो पावे —
 आ भूकम्प बबण्डर जिस के मन में धोर रठावे —
 बैसी नृप की दशा हुई निज सुख का अन्त न पाया —
 भूला हुआ स्वप्न सा उनका शीघ्र याद हो आया ।
 भेम्भा में तिनके सा उनका धैर्य उड गया सारा —
 उन से पहले ही जा पहुँचा हृदय जहाँ था प्यारा ।
 पुत्र हीन नृप चले शीघ्र दोनों बोंहें फैलाकर —
 विद्युत ने जैसे चरणों में गति भर दी हा आकर —
 जाकर हृदय लगाया या वह प्रथम लग चुका जाकर ?
 एक हृदय ही इने पिता का बतला सकता आकर !
 पुत्र और निज पुत्रव्यू का भिन्नक वष निहारा —
 नीति निपुण नृप के नयनों से बहे अश्रु बन धारा ।
 “ कब अशोक मैं, मुझे आज से सय सशोक ही कहना !
 होकर जिसक पुत्र तुम्हें भी कष्ट पड़ा यह सना ।
 तुम थे नभ के कुसुम प्यार की इस सकीर्ण पाण्डि में —
 कैसे अट पाते कुबर के धन से इस लघु निधि में ! ”
 सारा भेद जानकर नृप को कष्ट हुआ अति भारी —
 छिपी हुई है तिष्यरक्षिता में कलंकिनी नारी —
 नारी ! अब तो सदन सक्का सहन शक्ति की सीमा —
 लौंघ चुकी. तू नहीं जानती. तू है कृत्या भीमा ।
 मेरे निकट मृत्यु था कितना तेरा तू क्या जाने ?
 पर प्रत्यक्ष उसे अब कोई कैसे मिथ्या मान ?

आज मेरे और तेरे स्वप्न हैं असमान —
 पापिनी तू है न तुझका स्वपथ का कुछ ज्ञान !
 पुत्र को अन्धा बन कर दे दिया वनवास
 मृत्यु से भी कठिन तर अब दण्ड की कर आप ।
 मृत्यु भी तव हाथ ! धो सकती न आज कलंक
 तू विमल नारीत्व छोकर हो चुकी है रंक ?

पद्मा भी कुणाल का आग सुनकर ऐसे आई —
 जैसे ममता हो समीर की गति पद में भर लाई ।
 उष्ण चुम्बनों की उसने सुत पर वर्षा की आकर —
 फिर बोली काञ्चना वध का आलिङ्गन में लाकर —
 अब तुमको वन्दनी बना निज दृष्टि बीच रखूंगी —
 नहीं भूलकर दूर दृष्टि के फिर नगाच रखूंगी !
 तुम रहती हो जहाँ वहाँ ही स्वर्ग वायु है बहती —
 तुम से है यह धन्य धर्मिणी, गिरा गर्व से कहती ।
 तुमने आत्म खण्ड फिर लाकर मेरा मुँह मिलाया —
 किया नियति ने अध, किंतु मम हित प्रकाश वह लाया ।
 इस सुन्दर सुख की विला में राजन ! सबकुछ भूलो !
 आओ आज इन्हीं दायों से स्वर्ग यहीं पर छूओ !
 तिष्यरक्षिता भगिनी मेरी क्षमा उस भी कर दो !
 उसकी ही गोदी में मेरी गोदी का धन धर दो !
 मान्य भोग से बाला स्वामी ! कौन बचा इस जग में —
 ले कर तप्त शरीर सूर्य भी चलता सून मग में !
 आज आसुओं में यह दृबी है असहाया नग —
 एक दिवस थी तिष्यरक्षिता यही प्राण ने प्यारी ।
 क्षमा करो अपराध खेद सब निज मन का धा डालो !
 छात्रवीर हो छात्र धर्म को आआ प्रियतम पाता ।
 कहने लगा कुणाल पिता मा पर अमप मत करना !
 दोष किसी का नहीं सत्य ही मुझ भाग था भगना ।
 मां के बिना एक क्षण भी मैं यहाँ न काट सकूँगा —
 अपनी इस भावुकता को मैं किस से बाँट सकूँगा !
 कहा पिताने धन्य धन्य सुत ! धन्य तुम्हारा व्रत है !
 लो यह स्वर्ण मुकट तुम पहनो ! तम स सब का हेतु है !
 पुत्र-भक्ति की स्मृति में नृप न तक्षशिला में सुन्दर
 एक बनाया स्तूप रूप या दिया भाव का मनहर ।

* * * *

जय जयति देवानां प्रिय नय ! जय ! अशोक नरेश !

पैदा हुये जिनके सुपुत्र कुणाल-से करुणेश !

नय जयति ! पद्मा काञ्चना के कीर्ति के कल गान

गूँजे जहाँ- जय जयति भारत-भूमि भूरि महान ।

गीत —

टूटते हैं कब सितारे !
ये किसी के टूटते दिल —
जो नहीं पाये अभी मिल
या कि विछुड़ों पर गिराता
आज निर्दय नभ आगार ।
टूटते हैं कब सितारे ?
फूल झड़ी कोई छुटाता,
स्वर्ग अपना धन लुटाता !
या दिखाई पड़ रह ये —
नियति के निष्ठुर नजारे ?
टूटते हैं कब सितारे !
शून्य नभ का शेष सम्बल —
अनिता है कौन कर बल ?
हाय ! लौटा दो उसे वह
मांगता अञ्जल पसारे ।
टूटते हैं कब सितारे ?
फूटते टूले गगन के —
अश्रु या रजनी नयन के —
चू पड़े जयतक उन्हें —
रजनीश निज कर से सँभारे ।
टूटते हैं कब सितारे !
यह सितारों में कहानी —
कौन लिखता है गुमानी ?
भूल होने पर वहाँ से
अङ्क जो जाते निकारे ।
टूटते हैं कब सितारे !

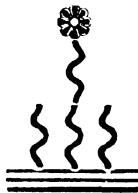
मन्देह ?



नवोदित रवि है कि नभ स्वर्ण सागर में
स्वर्णील कमल खिला सुषमा अयन है ?
किम्बा है प्रकाश में नहाया-सा प्रबाल-गुच्छ,
कल्पना के पत्नी का या उच्च उड्डयन है ?
अथवा असंख्य पाटलों के जो प्रसून खिले -
उनकी प्रभा का हुआ शून्य में चयन है ?
या कि तम तोम का तमाम काम करने को -
रक्त-भरा खोला लो ! प्रभात ने नयन है ?
नभ चित्र-फलक में रंग या गुलाबी भरा -
फूटा कहीं एक भी अभी न रेखा जाल है ?
किम्बा चुपचाप आ अरुण ने बचाके आँख
नभ-सुन्दरी के मला गालों पे गुलाल है ?
या कि खींचने से श्रान्ति पाके उपा नागरी ने -
पनघट पर घट रख दिया लाल है ?
या कि नभ सुकुर से साफ-साफ दीखता है -
किसी सुन्दरी का हा सिंदूर-भरा भाल है ?
अथवा निशा में था विहार परियों ने किया
रह गया उनका ही अरुण दुकूल है ?
किम्बा शीघ्रता में निशा-नयि ना गई है छोड़ -
माणिक-जटित अपना ये कर्ण फूल है ?
देव-वालिका के खेलने को या बनाया गया
रक्त वर्ण कन्दुक अनोखा सुखमूल है ?
शीत से सताये नभ वाग्नी या जलाते अग्नि -
लालिमा उसी की शेष और सब भूल है ?

त ट !

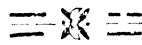
नचतीं गातीं आतीं लहरें,
फेनिल-प्रसून लातीं लहरें -
कध तुम्हें डिंगा पातीं लहरें
लज्जिता लौट जातीं लहरें
तट ! यह साधना कहाँ पाई ?
किस साधक ने है सिखलाई ?
जगती को देखा दुःख भग्न
हो गया तुम्हारा हृदय भग्न ?
क्या उसकी ही हैं ये दरार ?
तट ! धन्य तुम्हारा उर उदार ।
मुझको भी दो करणा उधार -
तुम-सा जगको कर सकूँ प्यार ?
जीवन की चिर संचित थाती -
सरिता सागर को ले जाती ।
तुम भी तो तट ! सुधबुध विहीन -
निज प्रियतम में हो आत्म-लीन ।
मैं ही फिर क्यों उलझूँ जग में -
चल पछूँ न क्यों प्रिय के मग में ?
जग के कोलाहल से डर कर -
आते कितने ही नारी नर ?
दां नग्न वे यहाँ शान्ति पाते -
तट ! गीत तुम्हारे हैं गाते !!



क ल क ल !

दोनों तट दोनों ओर रुके -
प्रेमालिङ्गन को-किन्तु रुके -
सरिते ! सुन तव कल-कल वाणी,
क्यों आज रुष्ट हो कल्याणी ?
मत ढालो अब मदिरा कल-कल
सरिते ! पीकर है चंचल जल !
पागल हो तट से टकरा कर
सर फोड़ रहा है जा-जाकर !
हैं मंत्र-मुग्ध से दोनों तट -
पर तुम भागी जाती सरपट ।
चंचल जल कहता है कल-कल -
पर तुम्हें कहाँ प्रियतम बिन कल !
लहरें करती हैं लास मधुर -
दिखला निज फेनिल हास मधुर ।
छिड़ता अनन्त का गीत नवल,
जल ताल देरहा है कल-कल !
सरिता का हृदय छिपा जल में -
पर व्यथा उमड़ती पल पल में -
क्रन्दन सुन पड़ता है कल-कल -
जाने क्यों उसके प्राण विकल ?
अपने फेनिल फूलों से खेल -
सुन्दरियों के अंगों से मिल
जल भी वानें करता कल-कल,
कह रहा आज ही सा हो कल !!
नगरों में है भारी हलचल -
कवि के हैं उस से प्राण विकल ।
सरिते ! भ्रम कर दो आज सफल -
यह बन्द करो अपनी कल-कल !!

नीराञ्जन !



दर्शन में शशि का पूर्ण उदय
स्वर में वीणा के बोल छिपे,
पाटल प्रसून पर शबनम-सी
मन्द-स्मृति अधरों बीच दिपे ।
यह उज्ज्वल आनन देख अरे !
शाजन अपूर्ण निज का माना —
उसमें न चारु चंचल कटाक्ष --
उसमें न मन्द वह मुसकाना ।
अचटक गुलाब ने व्यर्थ —
रूप रंग के गोश्व का सहा भार,
यदि वहीं देख पाता पहिले —
तो जाता कब का हृदय हार ?
यदि ये अराल धू युगुल चाप —
होते चितवन के नहीं तीर —
तो फिर मुख चन्द्र चक्रों से —
कोई न बचाता कहीं बार ?
स्वर्गीय सुधा का लघु लहरें —
जिन पर खिल रही गुलाली हो,
सौभाग्य सराहें अधरों की
मता सपने में पाली हो ?
अन्तर से जो रस की लहरी -
निकली नव पथ निर्माण हुआ;
या कुछ कहने का अधर खुले —
पुरुकित संसृति का प्राण हुआ ।

ये लाल सुरा-मे मधुर अधर
 देखे से मादकता बढ़ती:
 फिर मत पृच्छो जो पान करें—
 उन पर कैसे गहरी चढ़ती ?
 साकार विभाव मृदु गीतों का
 सुन्दर अधरों पर खेल रहा
 जो काकिल कंटों में अपना
 रह-रह कर गुग्गु उड़ेल रहा
 मधु मंदिर-भी ने दो आँखें -
 या भाग अकर्ण्य बटोर—
 विधि ने दो भागों में बाँटा -
 पकड़े न कहीं उन्माद जोर ?
 आँखों को रिमिति के मृदु डारे -
 हैं बाँध रहे चंचल मन का,
 बस एक भल्लू चन्द्रका
 प्राप्त होती है पूरे जीवन को !
 आँखों का मद्य निमन्त्रण पा
 सम्रा के सुन्दर कमल खिले;
 आँखों की पुतली देख -
 अमर निम्पन्, सुमन से शीघ्र मिले ।
 आँखों में स्वर्ग विहसता है —
 आँखों में हैं सुख के सपने;
 आँखें करती हैं चाह न्यून -
 अमृत का, अमृत में अपने ।
 पलकों के नीचे बिम्बरे हैं -
 सींटे सपनों के दल के दल,
 “ इन आँखों से ही देख सके,
 यह मना रहा संसार विकल ।

वाणी की वाणी कह न सके

ऐसे हैं कल कोमल कपोल;

अरुणाभा से भी पहले जो

फैलाते अरुणाभा अमोल ।

उन्मद शशि की किरणें मूर्छित -

होतीं जब ममृण कपोलों पर -

तब बिजली भी फीकी लगती -

बादल के अरुण हिंडोलों पर ।

जब फणिनी सदृश कुसुम गन्धा -

बेणी पीछे लहराती है -

सीमा सौभाग्य यहीं तक है -

इंगित से तब बतलाती है !

उर माँग रहा है प्रेम-दान

लट देने को है लटक चली;

या प्रेम-योगिनी ही कोई -

प्रिय की तलाश में भटक चली ।

मन की या सरस भावनार्ये -

वह व्यक्त चाहती है करना:

उपयुक्त शब्द पर पा न सकी

कँप उठी, कँप! सुख का झरना ।

यह चाह रहे खुल कर कहना -

ये स्नेह-सने क्या केश कहीं !

अब और अधिक अवगुण्ठन में -

रह सकते हैं हृद् भाव नहीं ?

रेशम-से कोमल कलित केश -

जिनमें लिपटी है छवि अशेष -

जो कुछ थोड़ी-सी शेष रही -

उसको पा सार्थक हुआ 'शेष' ।

कोमल बाहों-सा होने को -
 तप करने हैं जल में मृणाल;
 पर यह उनका सौभाग्य कहाँ ?
 ये जोवन तरु की सरस डाल ।
 ये जिसकी ग्रीवा में पडतीं—
 उत्फुल्ल हृदय-की माला-सी ।
 हो जाता सुख का चन्द्र उदय
 चढ़ जाती मोहक हाला-सी ।
 शिव कोपानल में भस्म मदन —
 जो मीच सके पीयूष कहीं ?
 तो फिर जो नव अँकुर निकलें —
 उन में कोमल क्या हाथ नहीं ?
 शशि क्षीण होरहा है दिन-दिन -
 कर की बलया बन जाने को ।
 आ लगी पदों में कमलों की —
 शोभा सदैव सुख पाने को ।
 उन उन्नत पीन उरोजों से
 यह उत्तरीय हट-हट जाता;
 नटखट बालक-मा मानो वह —
 अपना धन सबको दिखलाता ।
 जब सिन्दूराम सरोजों से —
 कुहरे का जाल बिखर जावे —
 तब भी उस निखरे यौवन की —
 छवि आगे और निखर जावे ।

ऊषा अलक्त लेकर आती -

रँगने को चारु चमण प्यारे,

मन के मर्मों की प्रिय कविता

लिखते निशीथ में हैं तारे ।

उडुगण को फैलाकर गिनने-

आता गुणगुण या नील गगन ?

चल-चल जीवन के चिर रहस्य-

खाजा करता है मलय पवन ।

हिल-हिल कर ये करते प्रसून -

मदमानी गति विधि पर विचार :

पाते न भेद तब मुरझा कर ---

मिट्टी में मिलते मान हार ।

‘ वासन्ती मलयानिल मँजुल

मापकता से नाता जोड़े-

चन्द्रिका रूप धर कर आये--

शशि उस पर सुधा-धार छोड़े ।

संगीत वायु में घुल जाये--

क्षणदा सी छवि फैले अपार-

ता भी यह निश्चय है कोई-

देखे न उसे इसको विसार ,, ।

ले तड़ित्तूलिका घन आते --

इसका ही चित्र बनाने को--

बुलबुलें विकल फिरती--

अरुणिम यौवन के गाने गाने को ।

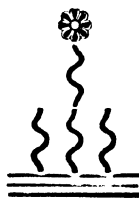
यह सशरीरी मलयज सुगंध

आई है जी बहलाने को--

रति रूप स्वयं धर कर आई

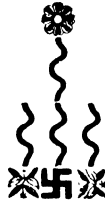
जीवित कविता कहलाने को ।

बन कर के मीठी हँसी, मधुर -
 उन अधरों पर हँस पाने की—
 नृपुर बन इच्छा होती है—
 चरणों में बस, बस जाने की ।
 ओ पवन चन्द्र ! ठहरो ! क्षण भर -
 देखो यह मन्मुख रूप बटे -
 फिर कहीं देखने को न मिले -
 मन को मन में ही हाथ ! रहे ।
 जैसी न कहीं पर भी देखी—
 ऐसी छवि शशि को दिखलाते;
 मन्दिर-पथ आलोकित करती -
 मन्द-मन्थर गति से ही आती ।
 हे चकित पुजारो देख रहा—
 झुक कर करता वह नीरांजन;
 वह है देवी के चरणों में - -
 उसके चरणों में उसका मन ।



आँख मिंचौनी

माधवी-निकुञ्ज में मैं बैठा सोचता था यही-
क्या कभी हैं प्राण-प्यारे याद मेरी करते!
इतने में धीरे से कहीं से चल आय नाथ-
मूँदते दृगों को मोद मन में बितरते ।
छूते ही करों को जान गया प्राण-वल्लभ हैं,
किन्तु जान कर भी बहाना रहा भरते ।
क्यों कि वह जिस से दृगों को और मूँदकर-
रहें सुस्पर्श से हृदय की पीर हरते ।



चाँदनी-में

नीलाम्बर में जब हँसता शशि—
तब क्या ये न भाव भाते—
चारु चन्द्रिका के प्रवाह में—
क्षणभर को हम बह जाते ।
अथवा तारा-कुसुम चयनकर—
माल्य एक रचते सुन्दर,
अपने प्रियतम की ग्रीवा में—
हँस हँस कर हम पहिनाते ।



तुलसी और रत्ना

१

रत्ना के एकान्त तीर पर
 समझ लूँ कुछ अपने को ।
 मैं नहीं भूल पाता हूँ -
 ए भर भी उस सुख सपने को ।
 शैवाल प्रकम्पित जल से -
 समीर से केश निरन्तर -
 ना के ही पृष्ठ भाग पर -
 इराया करते सुख से भर ।
 तू में ये मञ्जलियाँ या कि -
 रत्ना के सित दुकूल में -
 बोझीले नयन लाज से -
 ते दो अलि कमल फूल में ।
 रत्ना-सा परिपूर्ण प्रिया का -
 शि वासर रहता है यौवन,
 बार अवगाहन करने को -
 लचाता है मेरा मन ।
 जली, इन्द्र धनुष, शशि तारा -
 णिम उषा, सभी ने मिलकर,
 रत्ना को विरचा है -
 दल के फूलों ने खिलकर ।
 रा के कोमल गीतों से -
 तका अतिशय कोमल मन है ।
 वभूत की जगह चाँदनी -
 से जैसे निर्मित तन है ।

स्वर्ग-लोक है श्रेष्ठ किन्तु -
 उसमें भी कब रत्ना-सा धन है ?
 मर कर भी मैं इसे सुनूँगा -
 (रत्ना तुलसी का जीवन है) ।
 हैं नारियाँ अनेक जगत में -
 कोमल, किन्तु कठोर प्रकृति हैं,
 मात्र विधाता की रत्ना के -
 द्वारा हुई सफल यह कृति है ।
 है यह चन्द्र कलंक न जिसमें -
 कण्टक रहित फूल यह सुन्दर,
 है यह रत्न कठोर नहीं जो -
 जिसका मृत्यु जगत के बाहर ।
 इसके लाल लाल हाँठों की -
 आग पान कर होता शीतल,
 इसके बाहु बन्धनों में बँध -
 मुझे मुक्ति का मिलता है फल ।
 कली फूल का साथ देख कर -
 रत्ना ने था कहा एक दिन -
 “ हम दोनों भी इस प्रकार से-
 साथ रहें प्रियतम आजीवन ”
 तब मैंने यह कह कर उसके -
 अधरों को चूमा था उस क्षण -
 ‘ इन अधरों से ही हो सकता -
 प्रेयसि ! है ऐसा मधु वर्षण ’ ।

एक दिवस रत्ना ने आकर —
 स्वानुमति का चित्रण छल से —
 एक सखी का कह कर मुझ का —
 दिखलाया था जब कौशल से ।
 नील-मिथु का चित्रण था वह —
 लहरों पर थे रत्न बिखेरे —
 बोली तुम्हें रत्न प्रिय लगते —
 तो ले लो ये रत्न घेरे !
 तब मैंने मुख फेर कहा था
 ना ये मेरे कौन काम के,
 इनमें जा कुछ सुन्दरता है —
 वह कारण वश 'रत्न' नाम के ।
 मेरा रत्न पास रह कर नित —
 करता रहे हृदय आलाकित,
 इन पत्थर के टुकड़ों का दं —
 उस सुख से करता क्यों वाञ्छित !
 लज्जारुग्ण आनन पर बरवश —
 इषत हास्य कहीं स लाकर —
 'अजी' बड़े तुम टीट ! कहा बस —
 इतना ही था भौंह चढ़ा कर ।
 कभी इसे क्या भूल सकूँगा —
 यह भी क्या हो सकता सम्भव !
 इस कोमल सुवि को लेकर ही —
 दो क्षण जी सकता है मानव ।

तुलसी के चौरे पर उस दिन
 ध्यान मग्न हा नयन बन्द कर,
 जाने किन भावों में डूबीं —
 मना रहीं क्या प्रेम पुरस्सर ?
 मैंने धीरे धीरे आकर
 शान्त भाव से पास बैठ कर —
 कहा तुम्हारा तुलसी यह है,
 देखा नयन खाल कर पल भर !
 चुप ! चुप !! यह परिहास न अच्छा
 यहाँ देवता के समीप में —
 एक तुम्हें ही देख रही हूँ —
 मुक्ता सा मैं हृदय सीप में " ।
 ये सब बातें आज याद कर
 हृदय हो रहा है अति चंचल —
 मुझे और कुछ नहीं चाहिये —
 छाड़ एक रत्ना सा संबल ।
 रत्ना से सम्बाधत जो कुछ —
 वह सब लगता है अति सुन्दर,
 इस सैकत तट ने भी प्रायः
 रत्ना का देखा है दृग भर !
 इसन कर एकान्त प्रणय की
 मधुर चेष्टाओं का दर्शन,
 मौन-भाव से कहा यही था —
 'धन्य ! धन्य मानव का जीवन'
 जिस में रत्ना सी नरि है —
 जिम में है आलिंगन चुम्बन —
 जिस में जीवन की सुंदरतम —
 घड़ियों का होता है नर्तन ' ।

लहरों में 'जीवन, बन करके-
'प्रश्न' उठा करता है प्रतिपल—
और बना 'उत्तर' गिरता है—
पछताता कहता है 'छल छल' ।
हाय! एक पल का जीवन था—
उस में भी कुछ कर न सका मैं
जीवन कहला कर जगती के-
जीवन का दुख हर न सका मैं!
छल छल! बड़ा विकट यह छल है—
तो क्या यह जीवन ही छल है?
यही प्रश्न है सबके आगे—
इसका कठिन खोजना हल है ।
किस जीवन धन की स्मृति में यह-
टपक रहा है नभ से जीवन?
किसकी ये अतृप्त इच्छायें—
मेघों में चमकी बिजली बन?
एक प्रश्न यह भी है इसका—
कौन बता सकता है उत्तर?
'मैं' इतना ही कड़ा किसी ने-
स्वर में नवल माधुरी को भर ।
चिह्नक उठी रत्नास्वर सुनकर-
यह तो निज प्रियतम का स्वर है—
पर इन वर्षा की घड़ियों में
उनका आना अति दुष्कर है ।

फिर क्या मेरी मधुर कल्पना-
सशरीरी बन बोल रही है!
रजनी के एकान्त प्रान्त में—
अपना आवृत खोल रही है?
सूचीभेद्य तिमिर छाया है—
आज सभी ही कृष्ण दिखाते—
राधा भी होती तो उनके
कृष्ण हाथ मुश्किल से आते ।
“पर मेरी राधा सन्मुख है—
और कृष्ण यह पास खड़ा है—
फिर भी नहीं चीन्हती उसको-
कैसा यह आश्चर्य बड़ा है!
आओगे जब जिस स्वरूप में—
प्रियतम! तुम्हें चीन्ह मैं लूंगी—
क्या यह कहा नहीं था तुमने—
तुम्हें प्यार नयनों का दूँगी, ।
किन्तु इस समय मौन तुम्हारा—
कुचल रहा है कोमलता को—
इससे कठिन तुषारपात भी—
होता होगा नहीं लता को?
गालों पर खिलते गुलाब दो—
चरण कमल से कोमल सुन्दर
फूलों से निर्मित नारी है—
चम्पक-सा है वर्ण मनोहर—

अबतक यही मानता था मैं—
 किंतु गलत यह था परिभाषा,
 दया स्नेह से हीन उपेक्षा-
 नारी है साकार निराशा ।
 नारी शब्दों से न बुलाती-
 किन्तु कामनाओं के द्वारा—
 करती सदा प्रतारित नर को—
 नारी है मानव की कारा
 फिर भी वह नर की काया की-
 छाया होने का भरती दम,
 हृदय दूर रखकर नारी के—
 अधरों से है निकला प्रियतम
 वह कहती है सबकुछ देकर—
 नारी नर को, रिक्त हुई है,
 मैं कहता हूँ प्रेम राज्य में—
 नारी ही अभिषिक्त हुई है” ।
 अश्वरुद्र भाषा में रत्ना-
 बोली “जितना शशि शीतल है-
 जितना उष्ण सूर्य है जितना—
 युग युग के पावस में जल है-
 उस से अधिक प्यार नारी के-
 रोम रोम में नर के प्रति है—
 नर ही उसका परमेश्वर है—
 नर ही उसकी जीवन-गति है ।
 किंतु इस तरह चोरों जैसा—
 छिपकर आना है क्या शोभन?
 भारत की नारी का इससे—
 क्या उज्ज्वल होसकता आनन?

आप हृदय में रहते मरे—
 फिर भी हाय! न इस से परिचित,
 नारी उसे नहीं सह सकती—
 जिस से हो उसका पति निंदित ।
 नारी की दोनों आँखों में-
 बहती है करुणा की धारा—
 नारी के सुस्तन्य पात से—
 जी उठता मानव बेचारा ।
 नारी के स्वप्नों में केवल—
 उसका स्वामी ही है सहचर—
 नारी इस अभिशप्त जगत के—
 लिये एक वरदान मनोहर ।
 सरस भाव जैसे कविता में—
 जैसे वर्षा में आते स्वर—
 जैसे सौरभ मृदु कविता में—
 जैसे प्राति पास परमेश्वर—
 वैसे शुभागमन स्वामी का
 सब प्रकार होता है सुखकर—
 पर इसभाँति रात में आना—
 शल्य चुभोता है उर अन्तर ।
 वर्षा की उस चट्टी नदी में—
 हुआ न तुम्हें प्राण का भी डर?
 एकाकी चल दिये रात में—
 यद्यपि राक रहे थे जलधर ।
 इसे प्यार कहने में होगी—
 मानव की भाषा भी लाञ्छित-
 क्या अवशेष रहा था केवल-
 एक यही मेरे हित वान्छित?”

“रत्ने ! ठीक कहा है तुमने
 पर कैसे तुमको समझाऊँ ?
 हृदय चीर कर तुम्हें दिखाता —
 पर अब कैसे उसे दिखाऊँ ?
 नहीं प्रणय के आगे कुछ भी —
 मानव रख सकता है गोपन !
 किन्तु प्रणय अब कहाँ ?
 सत्य कहन में क्यों पीछे हटता मन ?
 नहीं जानता था जीवन में —
 आयिगा ऐसा भी अवसर —
 जब अपने ही फूल न देकर —
 अपने को मारेगे पत्थर ।
 तुम कहती हो भरी नदी थी —
 पर मेरे नयनों का पानी —
 था उससे सौगुना इसे तुम —
 कैसे जान सकोगी रानी ?
 एकाकी मैं कहाँ साथ थी —
 कितनी मिलन उमंगें मेरे —
 विद्युद्दीप दिखा जलधर भी —
 बहचोते समीप थे तेरे ।
 तूफानी थी प्रकृति किन्तु—
 मेरे मन का तूफान बिकट था—
 हाय ! कहाँ क्या तुच्छ प्रकृति का—
 ध्वंस, हृदय के ध्वंस निकट था ।

किन्तु हाय सब व्यर्थ होगया —
 स्वर्ण-स्वप्न भी टट चुका है,
 सम्पुट हैं खल गये कमल के
 भेद प्रकृत का फूट चुका है ।
 बदल गया सारा जीवन है —
 अब मैं देखूंगा अपने को —
 भूलो ! भूला प्रिये ! भूल जाओ !
 तम भी भंगुर सपने को !
 जिनमें तुम्हें बनाया जिसको —
 यह सारा ागट वभव है —
 जिससे है यह जीवन सुन्दर —
 जिसे हुआ मधुर शैशव है ।
 सूर्य चंद्र जिसके दा दीपक —
 नभ में करते रहते जगमग —
 जिसे होड़ कर सच्चे सुख का —
 नहीं और कोई भी है मग ?
 आज नहीं तो कल इस सुन्दर
 चेहर पर झुर्रियाँ पड़ेगी,
 उस जीवन में शान्ति कहाँ है !
 जहा आँख से आँख लड़ेगी !
 अब सौंसों से सौदा कर के —
 स्वप्नों को मैं ले न सकूंगा
 अपनी उम सुन्दर दुनिया को —
 इस दुनिया का दे न सकूंगा ।
 अच्छा ! विदा चला मैं रत्ने !
 मेरा प्रिय है मुझे बुलाता —
 मुझे जो उन दो अब भीधा,
 सीधा एक उभी मे नाता ।
 गंगा नदी पार करने में —
 जब समर्थ है प्यार तुम्हारा —
 तब भवाब्धि मे पार करगा —
 (सर्वोत्तम) का क्यों न सहारा ” ?

रत्ना ने आगे बढ़ देखा-
 किंतु वहाँ पर था सूनावन,
 खिले बाग की जगह भयानक-
 दाख रहा था अब बीड़ वन ।
 चहरे पर उजड़ा बसंत था-
 और दृगों में उमड़ा सावन,
 धधक रहा था ग्रीष्म हृदय में-
 हाय ! दूर उसके मनभावन !
 मरा जलद भुंक रहा भूमि पर-
 सावन में उन्मादित होकर-
 किसके आलिंगन को व्याकुल
 वह पुकारता है रो रो कर !
 और इधर मैं भी रो रो कर-
 कहाँ गये प्रिय ! कहती प्रतिपल,
 नहीं पपीहा की पुकार यह-
 मेरी ही पुकार है अविकल ।
 आँखा में आँसू, आसू में-
 बहती है वेदना निरन्तर-
 तुम्हें ढूँढ़ कर वह लायेगी-
 चाहे जहाँ छिपो तुम जाकर !

* * *

ओ निर्मम ! जाने की बेला-
 पल भर तो दर्शन देता जा !!
 इस लुट्टे हुये मेरे मन की-
 रे ! भेंट विदा की लेता जा !

ओ निर्मम !

कैसे विच्छेद दीर्घ काटूँ ?
 किस से अपनी पीड़ा बाटूँ ?
 है खडी हुई तेरी रानी-
 अवरुद्ध करूँ, व्याकुल बाणी-
 आँसू के सागर में उसकी-
 जीवन नैया तो खेता जा !

ओ निर्मम !

जीवन की काली सूनी सी
 कैसे बीतें लम्बी घड़ियाँ !
 क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? कबतक ?
 गूँऊँ ये आँसू की लड़ियाँ ?
 जैसे सब सुख लेचला-
 प्राण भी वैसेही यह लेता जा !!
 ओ निर्मम !

* * *

इधर रुदन करती थी रत्ना-
 और उधर उसके जीवन धन-
 अपन को पढ़ते जाते थे-
 रह रह दुहराते ये गायन-

* * *

मृत्यु तक साथ रहे तो क्या !
 मृत्यु तक साथ रहे तो क्या !
 मरने के भी बाद अमर
 रहता है जो सम्बन्ध-
 नहीं देखते उस-

आग्य रहते हम कैसे अंध !
 हवा के साथ बंधे तो क्या !
 मृत्यु तक साथ रहे तो क्या !

* * *

जब दुख ही सुख हो जाता-
 ऐसा भी जीवन में है
 मानव के अक्सर आता ।
 जब दुख ही सुख हो जाता !

* * *

जो जीवन की प्रत्येक पुलक कम्पन में-
 ध्वनि जिसकी गूँज रही समीर के स्वन में,
 सखि! वही! वही! हैं वही हमारे मन में ।
 जो फलों के अधरों पर हँसता रहता-
 लहरों में जो अषना दिल है कुछ कहता-
 बस उसमें मैं वह मुझमें ही है रहता ।
 शशि जिसकी शीतलता का परिचायक है-
 विहगों में जिसका ठिपा हुआ गायक है
 वह मेरा दिलवर ही तो जग नायक है ।
 कामल किशलय में कर स्पर्श है जिसका-
 निर्झर लहराता हुआ हर्ष है जिसका-
 वह मुझे छोड़ कर होसकता है किसका ?

* * *

४

एक तरु तले शान्त भाव से-
 बैठे हुये विविक्त देश में-
 पल पल पकट होरहा जिनके-
 मन का था वैराग्य बेश में ।
 तुलसी की माला थी कर में-
 मन में राम नाम का जप था,
 जिनकी आँखों में स्वदश था-
 जिन के राम रोम में तप था ।
 सांच रहे थे प्रिय भारत की-
 संस्कृति कितनी हीन हुई है ?
 चारों ओर शून्य-सा फैला-
 आर्य जाति यह दीन हुई है ।

होकर के पद-दलित धूल भी
 मानव के शिर पर चढ़ती है,
 ठुकराई जाकर भी पर यह-
 जाति नहीं आगे बढ़ती है ?
 यह मर्मप है राम नाम की
 इमे पिलाकर सुधा निरन्तर-
 जीवन की ममता से इसका-
 फिर भर देना होगा अन्तर ।
 इसका कुछ आदर्श नहीं है-
 अधकार में मटक रही है-
 पराधीनता के पत्थर पर-
 शीश प्रेम में पटक रही है ।
 कभी न मिटनेवाली मसि मे-
 पन्ने पन्ने पर जीवन के-
 फिर रामायण की रचना कर-
 समझाय रहस्य सब मन के ।
 पुष्पित फूलों की सुगंधि ले-
 चारु चांदनी की उज्वलता-
 इन्द्र धनुष का रंग साथ ले-
 आई रामायण की कविता ।
 अप्सरियों के मृदु नूपुर की-
 मधुर मधुर फकार मनोहर-
 मनुष्यत्व देवत्व सभी कुछ-
 है उसमें साकार मनोहर ।

एकसौ दो

“निर्जन तरु तुम मुझे बुलाते—
 दाय हिलाकर डाली डाली—
 मैं मुझी हुई लता हूँ—
 मेरा सब कुछ खाली खाली ।
 प्राण भरे मेरे गीतों में—
 अब ऐसा उत्साह कहाँ है ?
 बतलाओ मेरे वसन्त की
 भैरवी ! झूली राह कहाँ है ?
 फिर डाली हिल उठी और ! क्या-
 इसमें है कुछ छिपा प्रयोजन ?
 चलूँ उभी ही और चलूँ मैं—
 शायद वहीं कहीं हो ‘जीवन’ ?
 सरिता भी कल कल ध्वनि करे—
 इसका हो कर रही समर्थन,
 ऐमेही एकान्त शान्त में—
 त्यागी करते हैं तब अर्जन ।
 वह कोई भर चुका कमण्डलु—
 दीख रहा सरिता के जल से—
 जैसे कोई बीन चुका है—
 किसी प्रियसी का सुख बल से !
 इस के कंधे पर झोली है—
 सामग्री उसमें पूजन की,
 सब तज कर क्या यही वस्तुयें—
 प्यारी होती हैं हरि-जन की !

रत्ना ने ये शब्द जोर से कह कर—
 पहिचाने जीवन-धन,
 तन के पहले ही चरणों पर—
 लोट लोट सुख पाता था मन ।
 आज यही हात जो मेरे—
 जीवन के स्वादिष्ट अन्तिम पल,
 तो रत्ना का भाग्य देखकर—
 स्वर्ग नारियों भी उठतीं जल ।
 कितना जीवन हाथ ! वेदना को—
 दे कर पायें हैं ये पल,
 दिन भर जल कर साँझ समय ये—
 मिल गुलाबी नभ को बादल
 मृग शिशु के भाले नयनों में—
 देख तुम्हारे प्रियतम ! लोचन-
 कलालाप काँकिल के स्वर में—
 सुन कर करती कष्ट विमोचन ।
 कब तक अपनी प्यास बुझाती-
 किन्तु बताओ ! आंस चाटकर !
 ले बैठें सुख आप अकेले—
 इस अबला का दुःख बांट कर” !
 ‘रत्ने ! यह दो एकबार तुम
 बात वही फिर मेरे मन की-
 सब तज कर क्या यही वस्तुयें
 प्यारी होती हैं हरि जन की ?
 लो ! झोली यह जल अर्पित है—
 यह व्यवधान बीच का दुःखकर,
 हरि, हरि-जन में डाल रही थी-
 कंधे पर चढ़ कर यह अन्तर ।

दो दो बार दिया है मुझको
 रत्ने ! तू मने सच्चा शिक्षण-
 पूजा का यह फूल तुम्हारे ही-
 द्वारा हो प्रभु का अर्पण ।
 सुख की निधि है पास तुम्हारे-
 जैसे सरिता में यह शुचि जल,
 एक बार बस आँख खोल कर-
 तुम्हें देखना होगा केवल ।
 पल्लव झड़ जाने पर लतिका-
 जैसे ले प्रभु नव पल्लव-
 पूर्ति कर रही है उस टुटि की-
 जैसे यह तुमको भी सम्भव ।
 तुम भी आगे बढो ! तुम्हारा-
 कर्म क्षेत्र करता अभिनन्दन !
 तुलसी यह कवि- रत्न, कहाये-
 पा सहयोग तुम्हारा पावन ॥

मैं घृत देश यज्ञ के हित तुम-
 सुलग उठो ! रत्ने ! समिधा बन-
 स्वाधीनता स्वर्ग में फिर से
 जगे देश पाकर नव जीवन !
 भर जाये चिर जीर्ण पुरातन
 गूँज उठे आशा का नव स्वर,
 राम कृष्ण की पावन भू यह-
 प्राणद फूलों से जाये भर,,!!



प्रदीप की परितृप्ति !



आज मेरा दुःख भी
सार्थक हुआ आली ?

१

सुप्ति से मुझको जगाया-
तिमिर सब मेरा भगाया-
स्नेह का कर दान-
पावन दृष्टि दे डाली!
आज मेरा०

२

पास में ही स्थान देकर-
स्नेह की सुधि सजगलेकर-
तीक्ष्ण बात सदा-
कृपाञ्जल कोर से ढाली ।
आज मेरा०

३

तनिक छूने से तुम्हारे-
स्वप्न युग युग के हमारे-
होगये साकार फैली-
प्रेम- उजियाली ।
आज मेरा०

४

अब सदा रखना जगाये-
लौ तुम्हीं से हूँ लगाये!
बस तुम्हीं से ज्योतिमय-
यह दीप छाविशाली !
आज मेरा०

ईसा

तुम फूल हमें देगये और काँटों का तुमने ताज लिया—
दुख को सुख तुमने मान सदा दुख का ही हँसकर राज लिया ।
असहाय अनाथ भटकतों को अपनी ग्रीवा का हार किया—
अपनी भोलौ पर-पीड़ा से भरने का था व्यापार किया ।
ध्रुव सत्य धर्म का ठीक ठीक था मूल्य तुम्हीं ने तो जाना,
मानव मन की दुर्बलता को बस एक तुम्हीं ने पहिचाना ।
जो जन जितना अपराधी है वह प्रभु का दया-पात्र उतना—
इतना न किसी ने भी समझा तुमने इसका समझा । जलना ।
जो थके हुये उनका तुमने अपनी गोदी में स्थान दिया
जो पतित दलित उनका तुमने अपने उरका सम्मान दिया !
अपनी कल्याणी वाणी से तुमने नवयुग निर्माण किया
अपने जीवन की आहुति दे जग के जीवन का त्राण किया ।
नृत्यों को अंग भंगिमायें व्रत भंग भला कैसे करती
जब अंग-भंग गलिताओं का पीड़ायें सदा सौख्य हरती ।
दृग की मादकता के डोरे अनुराग पाश जब चुनते थे—
तब पड़ हुये पथ के काँटे ककड़ देखा तुम चुनते थे ।
कोमल विद्रुम की लहरों में जब फूल चमेली के खिलते—
तब हर्ष रुदन में डूब गया जिनका तुम उनसे थे मिलते ।
मधु-कलश झिपाये छाती में यौवन जब जग को छलता था—
करुणा के शीतल अञ्जल में तब हृदय तुम्हारा पलता था ।
वे बाँहे-प्रणम-शृङ्खलायें बाँधने तुम्हें जब जब आई—
तब तब कुरूपतायें जग की आँखों के सम्मुख उठ धाई ।
मणिमय पर्यङ्क मृदुलता में तुमने भीषण कटुता देखी—
संसार और उसकी मोड़क आशाओं की लघुता देखी—
मानव देखा फिर मानव की वह पीड़ित मानवता देखी—
उस पर शासन करनेवाली परदे में दानवता देखी ।
दुनिया ने जो पाना माना तुमने उसको 'खोना' जाना—
क्षणभंगुर सुख पर दीवानी दुनिया को तुमने पहिचाना ।
अभिताम सदृश तुमने देखा तम में भूला भव भटक रहा—
दृग मीच सुधा के घोखे में सोनमाद हलाहल गटक रहा ।
बस घृणा निराशा क्रोध वैर मद मत्सर ही परिलक्षित थे—
बहु त्याग तपस्या प्रेम क्षमा सौहार्द सभी अन्तर्हित थे ।
आँसू आहों की भाषा में नारियाँ व्यथा निज खोल रहीं—

वर्षा नभ सी सबके मुख पर कालिमा शोक की दीखरही-
 दुख को निश्वास रूप देना. अवशिष्ट यही थी सीख रही ।
 बस एक विवर्ण विकृत शवको छाती से सब जन चिपकाये-
 बन्द किये अपनी आँखें तान्द्रिल स्वप्निल से भरमाये ।
 तब ओ प्रकाश के अग्रदूत! तुमने प्रकाश था फैलाया-
 आवरण जाति रंग का जिसको क्षण भर भी नहीं रोक पाया ।
 जो गिरे. उठान को उनके था हाथ तम्हारा उठ आया-
 भव-ताप दग्ध जो थे उनको तुमने दी करुणाञ्चल-छाया ।
 तुमने ध्रम में भूल जग को यह बार बार था समझाया-
 "उस एक पिता के पुत्र सभी फिर द्वैतभाव यह क्यों आया!
 हों- घृणा घृणा से करो: घृणित जीवोंपर दिल से प्यार करो!
 हिंसाको जीत अहिंसा से भूतल को स्वर्गांगार करो ।
 है मृत्यु तुम्हारे जीवन से बढकर या उस से है जीवन?
 दोनों पा तुमको धन्य हुए हैं दया सिन्धु! हे करुणा धन!
 हे देव! तुम्हारी ओसविन्दु-सी फैल रही करुणा उदार!
 मरु-थल के मिकता-करण से गुण छाये भूमण्डल में अपार।
 हे नाथ! तुम्हारे दीनों को जो पलभर भा कर सका प्यार-
 तो तुमको ही कर सका प्यार तुम हो दीनों के कंठ हार ।
 अब भारी की प्रत्येक साँस अमरत्व तुम्हीं से पायेगी-
 यह एक दिवस भूला दुनया निश्चय सत्पथ पर आयगी ।
 वह दिव्य (द्रूस) का चिह्न दूर सारे विघ्नों को कर दंगा-
 जन-जन के अन्तम का फिर से करुणा के घन से भरदेगा ।
 पर आज तुम्हारे अनुयायी हो रहे परस्पर दुश्मन से
 हैं बाँध रहे मानवता को वे कृत्रिमता के बंधन से ।
 हड्डी के ढेरों पर उनकी मभ्यता नाच दिखलाती है-
 लोह की नदियों में उनकी मानवता नाव चलाती है ।
 वे मुट्ठी भर शासक सारे जग पर शासन करना चाहें-
 मानवता के अधिकारों को वे मानव से हरना चाहें ।
 यह देख तुम्हें हाता होगा सचमुच ही कष्ट बडा भारी-
 आओ फिर एकबार आओ ! भूतल पर ओ भव-भय हारी ।
 फिरसे आकर कर दो प्रकाश जिससे सब आँखें खिल उठें-
 सत्तायें डगमग डोल उठें मानवता की जय बाल उठें ।

— कविता का संसार :—



मेरे आस पास फैला है कविता का संसार
जिधर देखता उधर दिखाई पड़ती नई बहार ।
ऊषा के अञ्जल में भरता हँस हँस गान समीर,
खोज रही कलियों में रवि किरणें निज प्यार अधीर ।
प्रेमी के मन-सी बहती निर्मल धीरे जल धारा,
घोर निराशा में आशा सा लगा रजत किनारा !
पिक में मुझे सुनाई पड़ती है निज प्राण पुकार !
मेरे आस पास फैला है कविता का संसार ॥

हिल हिल कर कुछ कहती सी लगती मुझको हरियाली-
हाथ हिला कर मुझे बुलाया करती डाली डाली !
यह दार्शनिक तत्व-सी सन्मुख चारु चाँदनी फैली-
उसमें लगती भूल सदृश वृक्षों की छाया मैली ।
नवल क्यारियों में नभ की, खिलते प्रकाश के फूल
या कि सितारों जड़ा निशा रानी का दिव्य दुकूल ?
चन्द्र नहीं, यह चन्द्रमुखी करने निकली अभिसार.
मेरे आस पास फैला है कविता का संसार ।
लहरें निज पूर्णत्व खोजने को जातीं किस ओर ?
किसे बुलाने को ये मधुकर मचा रहे हैं शोर !
बादल की स्वर्णिम नौका पर होकर कौन सवार-
जाता है किस देश कहाँ किस से करने को प्यार ?
फूलों की वाणी ने रख कर रूप दृष्टि का पूछा—
दो दिन के हम हृदय-हार फिर तो जीवन है झूठा !
वे क्या जाने सीमा में ही है असीम विस्तार ?
मेरे आस पास फैला है कविता का संसार ।

सुमनों के सौरभ सा धीरे-धीरे आकर कौन!
 छा जाता प्राणों में मेरे मैं होजाता मौन ।
 नयन पुतलियों की कविता फिर फीकी पड़ने लगती-
 उस अनन्त के मिलने की तब प्यास हृदय में जगती ।
 ऋतुरानी शिरीष के फूलों की लेकर के तूली-
 उस छवि के ही चित्रित करने में निज को है भूखी ।
 कविता आती तब जीवन के खुल जाते सब द्वार ।
 मेरे आस पास फैला है कविता का संसार ।
 प्रातःकिरण के साथ जागती फूलों के संग हँसती-
 उस तितली में कितनी कविता की मस्ती है बसती?
 पुष्प-माल से जहाँ परस्पर गुंथ जाते दो प्राण-
 वहीं-वहीं हों- होते देखा कविता का निर्माण ।
 अंधकार से ज्यादा जिनके अंधकार है मन में-
 भौंक उठी कविता चिथड़ों से उन दुखियों के तन में ।
 ऊपर जहाँ सिसकते तारे नीचे हाहाकार ।
 मेरे आस पास फैला है कविता का संसार!!



प्रताप-प्रतिज्ञा



चाहे सुधाकर
उतर नम से
अग्नि बरसाने लगे -
चाहे दिवाकर
शीत हां निशि -
सौख्य मरसाने लगे -

चाहे गगन में
सुमन सुन्दर
सुरभियुत खिलने लगे -
चाहे मयूरों से
उरग गगन
प्रेम से मिलने लगे -

चाहे मही का दे डुवा
तज सिन्धु -
निज मर्याद का -
चाहे भले ही -
भूल जाये
सिंह भीषण नादका -

तो भी नहीं
पीछे पड़ेगा
पाँव वीर प्रताप का,
होने न दूँगा
मैं कलङ्कित
नाम अपने बाप का ।



ज
ग
च
न्द
की
भा
व्य-
भा
नि

जय-चन्द मत
मुझ से कहो!
मैं तो कलङ्कित चन्द हूँ-
मैं हूँ पराभव-
देश का मैं भाग्य
उसका मन्द हूँ।
धिकार दो मुझको-
कि पृथ्वी-राज-
मेरे पाप से-
पर वश हुआ, मैं-
जल रहा हूँ हाय!
दुस्सह ताप मे।

कालिदास !



‘कालिदास, इन वर्णों में है
भरी हुई कितनी आशा?
‘कालिदास, है भारत के—
गौरव की सच्ची परिभाषा?
कालिदास के बिना—
गुणों की दुनिया सूनी रहती हाय,
कालिदास औ काव्य परस्पर में—
दोनों ही हैं पर्याय !
कालिदास शृंगार-तिलक थे—
पुष्प-बाण के मधुर बिलास,
कालिदास के तुल्य धरा पर—
थे बस केवल कालिदास !
कितनी बार होचुका अबतक—
कितनी ऋतुओं का संहार—
किन्तु न कालिदास फिर आया—
रोती रही निराश बहार?
कितने बना बना कर हमने—
मेघ-दूत भेजे सन्देश,
किन्तु न भेरे कालिदास का.
द्रवित हुआ हे हरि ! हृद्देश?
नष्ट भष्ट रघुवंश हो रहा—
जो था भारत का सरताज—
उसे पुनः गौरव गिरि पर
आसीन करो! आओ कविराज!

अभिज्ञान शाकुन्तल जग में—
रचना अमर तुम्हारी है,
भूपर स्वर्ग उतार दिया है—
बलिहारी! बलिहारी है !!
वह विक्रम-उर्वशी लुभाती नहीं—
भला किसके मन को !
एक फलक चन्द्रिका प्राप्त भी—
होती पूरे यौवन को ।
पठ कुमार सम्भव, सम्भव है—
चित्त न कुछ पढ़ना चाहे?
हो जिसके श्रुत-बोध । क्यों न वह
ऊँचा ही चढ़ना चाहे?
कालिदास ! तुम एक अकेले—
वार्णा के प्रतिनिधि कवि थे!
थे प्रकाश के अग्र-दूत तुम—
स्वर्ण समय के शुभ रवि थे!!
मानवता को सरस बनाया—
जीवन की कविता रचकर;
जाओ छिपो दूर कितनी ही—
पर न रहोगे अब बचकर?
भक्त तुम्हारे तुम्हें ढूँढ़ लायेंगे—
सभी स्वर्ग मथ कर!
और धन्य होंगे चरणों में—
पत्र पुष्प निज अर्पित कर ॥

प्रियतम से !

स्वर्ग सौख्य सौन्दर्य सुधा की
जब जब कोई याद करे !
तब प्रारम्भ तुम्हीं से होगा-
हे मेरे आह्लाद-भरे !
स्वर्णिम उषा और सन्ध्याका-
प्रथम उदित मनहर तारा-
तुम्हें देख फीका लगता है-
दृश्य जगत का यह सारा ।

दुनिया कहती चारु चाँदनी,
मधुर गीत, तब शीतल प्यार,
एक तुल्य है, किन्तु हृदय में-
मेरे उठते यही विचार-
कुछ घंटों के बाद चाँदनी तो-
मैली हो जायेगी ।
किन्तु तुम्हारी प्रेम-ज्योति-
दिन दिन प्रकाश फैलायेगी ।

पवन तरंगों पर लहराता हुआ-
गीत थम जायेगा ।
किन्तु तुम्हारा प्यार अमर-
मर्त्यों को अमर बनायेगा ।
रहता है गुलाब काँटों में-
और शून्य में चाँद सखे !
किन्तु हृदय में तुम रहते हो-
और तुम्हारी याद सखे !

मधुर तुम्हारा स्नेह प्राप्त कर—
 यह प्रदीप भी जाग उठाः
 होठों को छू चुद्र बाँसुरी के—
 उर में भी राग उठा ।
 कोटि यत्न कर मानव भाषा—
 जिसे न प्रियतम! कह पातीः
 एक तुम्हारी दृष्टि उस—
 नीरव इंगित से बतलाती ।

एक दृष्टि में भरा तुम्हारे
 है समग्र जीवन का प्यार,
 एक तुम्हारे ही प्रकाश में—
 देख रहा सारा संसार ।
 रात दूध में नहा रही है—
 स्वप्न जाल बुन रहा प्रकाश
 हरिदाञ्जल ओढ़े बसुन्धरा
 फूलों के मुँह पर है हास,
 चिपटा हुआ गान वृक्षों से
 पवन हिला कर झाड़ रहा—
 तुम्हें रिझाने ही को प्रियतम !
 नभ निज सेना काढ़ रहा ।
 मेरी आशाओं का तुम से—
 सुन्दर चित्र नहीं कोई?
 मलय, शिरीष, गन्ध राका—
 तुमसे न पवित्र कहीं कोई!

प्रियतम! वे क्षण कितने सुन्दर?
 कितने है स्पृहणीय महान—
 जब-जब अपने को मैं खोकर—
 तुम्हें प्राप्त करता सुखमान ।
 सरस कल्पनायें निसर्ग की—
 हैं प्रभात, सन्ध्या प्यारे!
 पर वे लगती कितनी नीरस—
 जब तुम रहते हो न्यारे!

एकसौ चौहद

जीवन की इय सौँस सौँस में-
 तुम्हीं अनेखे रमते हो !
 तुम अनन्त के गीत !
 कहीं क्षण भर भी कभी न थमते हो ।
 जीवन का निर्मल्य -
 तुम्हारे चरणों पर हूँ चड़ा चुका:
 जैसे रखना प्यार !
 अब तो का हूँ बड़ा चुका ।

रूप सुधा पीकर मरता हूँ-
 तुम पर मर का जीता हूँ ।
 जीवन-धन हो! किंतु हृदय-घट-
 लिये फिर रहा रीता हूँ!!
 आँखों में रहस्य का जादू-
 अधरों पर मुसकान लिये-
 नृदुल कपोलों पर खिलते
 पाटल की अवि अम्लान लिये-

आओ! आओ! तड़ित वेग से-
 अब न सही जाती पीड़ा !
 रहने भी दो? बहुत हो चुकी-
 आँसू-मिचौनी की क्रीड़ा!!
 कभी किसी को प्यार किया होता-
 तो-तुम्हें पता होता!
 मिलन-प्रतीक्षा में हा! कैसा-
 हृदय किसी का है रोता?

उगते हुये सूर्य के सँग-
 उगती है मेरी अभिलाषा-
 किंतु सूर्य के साथ साथ ही-
 बुझ जाती मेरी आशा ।
 मेरी फूलों की दुनिया में-
 यों बिखेर करके अंगार-
 बोलो! तुम्हें मिला क्या प्यारे!
 केवल (निष्ठुर) का उषहार?

चिर वियोग के बाद मिलन की-
 मधुर मुसकराहट-से तुम ?
 आओ इस नैराश्य-निशा में-
 चिर परिचित आहट-से तुम !!
 वर्षों की रंगीन तितलियाँ
 एक एक कर पंख पसार-
 कितनी ही उड़ गई, न अबतक-
 खुला तुम्हारा करुणा-द्वार!

सत्वर आओ मेरे जीवन के-
 मृदुलाकर्षण प्यारे !!
 अथ से लेकर इति तक मेरा-
 तुम्हें समर्पण है प्यारे!!



स्वप्न में प्रत्यक्ष



ग्रोष्मकाल की रात चांदनी के कश्मीरी बालाएँ
केलम के तटपर आई थीं करने को जल क्रीड़ाएँ ।
देख अनोखा रूप मानने विस्मृति सी छाई गहरी
बन्द हो गई थी क्षण भर को केलम की क्रीड़ा-लहरी ।

एक चन्द्र ही था प्रातिविम्बित अब अनेक ये चन्द्र निहार —
कुमुद पड़ थे अममञ्जस में किस पर प्रकट करें अब प्यार !
लहरों की वाणी से केलम हर्ष प्रकट करती अपना —
जीवन में ये क्षण ही सुन्दर शेष सभी कुछ है सपना ।
विम्ब बढ़ाने विधु पहिले से आया था पद-चुम्बन को,
इतना हर्ष सँभाल न सकता आज पवन भी निज मन को —
बार बार वह चञ्चल होकर उड़ा रहा था अञ्जल को —
मानो पृष्ठ रहा था 'कैसे बन्द न हो यह सुख पल को' !

मृ को भारी पड़े न ऐसे कोमल-कोमल चरणों से
लिखती सी सांभार्य लेख के आई अद्भुत वरणों से ।
अपने वस्त्र रख दिये तट पर या शिर्ष ने कोमल दल-
त्याग दिये जिस से कोमल यह हो जाये कठोर भूतल ।

सुमनों में सारभ सी धीरे धीरे वे आई जल में —
ध्वनित हो उठे कवि वीणा के मृदम तार मानो पल में ।
श्रम से श्लथ वेणी की लट थी कहीं किसी मुख पर छाई —
जैसे अबरस्थ शशि सी हो भू-शशि को करने आई !

शशि के साथ चला आया या बादल का यह लघु टुकड़ा —
आई या अलि-अवलि देख कर यह सगेज सुन्दर मुखड़ा !
कहीं किसी की वेणी छूटी या कारा से तम छूटा —
अमा पूर्णिमा पिये जारही नया दृगों ने रस लूटा ।

कहीं बाँधती जूड़ा कोई मानो बिखरी सुन्दरता —
 अधिक घनी करती समेट कर—आये अब मनकी दृढ़ता —
 वह भी अपनी शक्ति देख ले पल भर में जायेगी भाग —
 भगने पर भी इन अलकों का भुला न पायेगी अनुराग ?
 कहीं किसी की कवरी में थी गुँधी श्वेत सुमनों की माल
 रयामा रजनी से जैसे चन्द्रिका मिली गलबीहियाँ डाल ?
 रेशम-से कुन्तल में चिपटी वह कोमल कृसुमों की माल —
 लगता जैसे सुन्दरता से मिल सुन्दरता रचती जाल !
 जु जलास्फालन में तत्पर वे ऐसी लगती शोभन —
 न देवियाँ भाव-मधुवन में हों उझालतीं प्रेम-सुमन ?
 ल में तारक छाया हिलती इधर वक्ष पर मुक्ता हार —
 ल में लहरें इधर उर्मियाँ तन में छविकी उठें अपार ।
 रजनी के बालों में मणि गण उधर चमकते थे प्यारे —
 जल के शीकर केश राशि पर इधर दमकते थे न्यारे ।
 कैयों से पानी बह बहकर नयनों से गिरता ऐसे —
 ढगल रहे हैं आज युगल ये खंजरीट मोती जैसे !
 जल में भीगे अरुण अधर कुछ मितता ऐसी दिखलाते —
 सुधा विनिर्मित अधर सत्य ही कवि बागीचा यह बतलाते ।
 चन्द्र-प्रकाश बढ़ गया लगता आज पूर्णिमा पूर्ण हुई —
 स्वर्गज्ञा सु-बालाओं की शस्त्री सारी चूर्ण हुई ।
 कोई कटि तक कोई-कोई थीवा तक पैठी जल में —
 रजत रश्मियों से तब शशि ने की टटोल सरिता तल में —
 इन गोरे गोरे अंगों से लिपट नीर है रस लेता —
 यह कैसा दुर्भाग्य ! हाय जो उसे नहीं कुछ भी देता !
 कल-कल कर के जल तब बोला “ अरे व्यर्थ क्यों देते दोष —
 तुम तो निशि भर रम लेते हो यहाँ क्षणिक यह है परितोष ” ।
 पलक पत्तियों को चञ्चल कर एक सखी बोली यह बात —
 ‘ मेरे हृदय कमल विकसित है— म्लानमना क्यों है जलजात ! ’

कहा अपर ने “अरी ! न तूने इसका कुछ भी समझा भेद —
 सदा प्रफुल्लित तब कमलों को देख हुये ये कमल सखेद ।
 चन्दानन के निकट कमल ये रहकर कभी न होते ग्लान —
 फिर इन कमलों से उन कमलों की तुलना करना अज्ञान ” ।

एक सखी ने एक सखी के पीछे जाकर के चुपचाप —
 मूँद लिये दग वह रोमाञ्चित होकर करने लगी प्रलाप —
 “ प्रियतम ? क्यों इतने कठोर हों जो प्रिय-दर्शन के साधन —
 वे भी छीन लिये हा ! असफल हुआ हमारा यह जीवन ?
 पर यों ही जीवन भर प्यारे ! कर स्पर्श का सुख लूटूँ —
 इन हाथों से कभी न छूटूँ — छूटूँ तो जग से छूटूँ ” ।
 यह सारा रहस्य सुनकर के कहने लगी सखी हँस कर
 “ सखि ! तेरा न दोष इस में है प्रणय पयोनिधि में धँसकर —
 कौन रख सका मन को वश में किसकी मति न पड़ी भ्रम में —
 प्रियतम के पीछे पीछे हों- कौन नहीं डोली तम में ? ”
 भीगे हुये वस्त्र अंगों से लिपट कर रहे मन मानी —
 मिलन भावना मानों प्रिय की प्रकट कर रहे मनमानी ?

यह वेणी व्यालिनी सुधा पी अमर तत्व यदि पायेगी —
 तो कितना अनर्थ दुनिया के लोगों पर यह टायेगी ?
 तभी पकड़ कर कमल इस हैं सारा अमृत निचोड़ रहे ?
 तमोमयी रजनी के तारे एक-एक या तोड़ रहे ?

और दृश्य देखते न क्या क्या ! इतने में कुक्कुट बोला —
 बिछुड़ गया मैं स्वप्न-देश से, जागृति ने निज दग खोला ।



निर्माण—रहस्य



मुग्धमना मृग ने सुन-सुन कर
जिस दिन मृदु वीणा की तान
प्राण दे दिये उसी दिवस से -
प्रकट हुआ 'आकर्षण' ज्ञान ।
भमरावलि ने खिली कली का -
जिस क्षण किया प्रथम चुम्बन-
गुञ्जन ही कह गया कान में—
हुआ उसी क्षण 'प्रेम' मृज्जन ।
रूप दृगों में भर सरोजिनी
जब रवि की करती थी चाह
तब 'तन्मयता' ने पहले-पहले-
देखी आने की राह ।
अस्ताचल गामी रवि-किरणों -
अन्तिमवार कमल छूकर—
चली गई सन्देश 'विरह' का—
जब से ही फैला भू पर ।
बादल का घूँघट सरका कर-
जब सुधांशु नभ से झँका—
तबसे ही आवरण रहित—
उस 'छवि' का मूल्य गया आँका ।
रात-रात भर जाग कुमुदिनी ने
जब त्रिय विधु को पाया -
तब से काय-मिलन से—
मनका मिलन श्रेष्ठ कवि ने गाया ।

ताप-तप्त जग को जब शीतल—
करने को निकले निर्झर—
तब दुखियों के 'दुःख' मिटाने '
जागी भावना प्रखर ।
कुहरे के परदे को तिम क्षण -
चीर दिनेश निकल आया -
उस क्षण से हो 'साहस' ने है—
जन्म मनुष्यों में पाया ।
जिस दिन से देखा मानव ने
सरिता का प्रवाह उद्दाम—
उस दिन से ही 'ध्येय प्राप्ति' के
हिन वह दौड़ रहा अविगम ।
जब देखा गुलाब काँटों में -
रह कर करते निज निर्माण -
तब जाना उन्नत होते हैं
विघ्न व्यूह में पड़ कर प्राण ।
जब पतझड़ का पीली पत्ती—
पवन उड़ा कर लाया पास—
तब जीवन की 'नश्वरता' का -
मिला प्रथम जग को आभास ।
जब से यह देखा मानव ने
पवन घूमता है स्वच्छन्द -
तब से ही 'स्वतंत्र' रहने की -
इच्छा उपजो उसे अमंद ।
कवि ने जिस क्षण सुना कौञ्च-
वध पर कौञ्ची का करुण विलाप—
उस क्षण से ही स्रोत 'काव्य' का—
बहा हृदय में अपने आप ।

— मंशोधन —

पृष्ठ	पंक्ति	अगुद्ध	शुद्ध
१	२	तही	तृही
२	{ ० ० १५ १७	बहु मिलान पहँची गगनांकन	बह मिला न पहँची गगनाङ्कन
४	८	अन्तरतम	अन्तरतम
८	७	व्यग्रं	व्यंग
१०	१५	मिलती	मिलती
११	{ १७ २३	बही अधकार	बही अधकार
१३	२३	मे	मे
१५	{ २ ३ ५ १०	ह भावनाए नम को मैकडों	ह भावनाए नम का सैकडों
२०	{ ४ १२	अबता सपने	अबतो सपने
२३	{ ६ २८	धल य	धूल ये
२६	११	लडी	लडी
२८	११	दखा	देखा
२९	{ ३ ७ २७ ४५	अहेला शाति सुख की अवहेला चन्द	अवहेला शान्ति दुख की अवहेला चन्द्र
३०	{ ८ १० २४	मनु आनद दर	मन आनंद दूर

शृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३२	{ ७ १७	हँसता कन्यक	हँसता कन्यक
३३	{ ४ ११	सौई मे	सौई मे
३५	{ ७ १६	मुह पदाकान्त	मुह पदाकान्त
३६	{ १४ १९ २४	आय मुझमे धृत	आय मुझमे ही धृति
३६	२६	पूछा	पूछो
३८	{ २९ ४२	करत हई	करने हुई
४१	{ ३ १० १४ १७ १९ २१	स्मित वया तुम्हें बछोह उच वास प्रातर्कृति मरा	स्मित क्यों तुम्हें बिछोह उच्छ्रवाम प्रतिकृति मेरा
४२	२	काई	कोई
४३	८	चम	चूम
४४	{ ३ ५ ७ ७	उषा मान ला तुमका तुम्हारी विद्रुम चतर हमारा हमारा	ऊषा मौन लो तुमको तुम्हारे विद्रुम चतुर सलोना सलोना
४५	{		

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४६	{ १५ १५	उमग क	उमंगें के
४७	१४	सुन्दरी ?	सुन्दरि ?
५०	{ १३ १७ २३ २८	प्याम कुसुम म सुनन जात	प्यासे कुसुम-से सुनने जाते
५१	{ १ १७ १८	पूरी आमश्चत का	पूली आसकने को
५३	७	अगार	अंगार
५६	३३	शान्त	श्रान्त
५७	६३	ओज	आज
५८	{ ४ ६ २७	मैं ता रक मदलता	मैं तो रंक मृदुलता
६०	{ ५ १३	वर्णन सान्दर्भ	वर्पण मौन्दर्भ
६२	{ २८ २९	लगाआ भल	लगाओ भूल
६७	{ २ ४ ९	सम्भुक उसका काञ्चनमाला	सम्मुख उसको काञ्चनमाला
६८	{ ११ १५ १६	तभ मनुआत्मा मुकृति का	नभ मनुजात्मा मुकृति का

शृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	{ ८	आनद	आनंद
	{ ११	का	को
७०	{ १३	फुटार	फुहारे
	{ १५	मनाते	मनाते
	{ २०	मेरे	मेरे
७१	१७		हैं
७२	{ ८	क्रान्ति	क्रान्ति
	{ २३	हँसती	हँसता
७४	१३	निष्ठुर	निष्ठुर
७५	१७	दर्पण	दर्पण
७६	३२	भाषा भ घोका	भाषा भी न देगई घोखा
७८	१०	चक्षुओं	चक्षुओं
८०	१६	पेसा	पेसा
	१	दशन	दंशन
	३	मुखका	दुखका
८२	२१	मूल्य	मूल्य
	२३	मेरे	मेरे
	७	वायु	वायु
२३	२१	अमष	अमर्ष
	२२	भाग	भोग
९०	२३	अकगुण्ठन	अवगुण्ठन
९४	३	आये	आये
९६	{ ३१	मात्र विधाता की रत्ना के,	रत्ना के द्वारा ही विधि की,
	{ ३२	द्वारा हुई सफल यह कृति है ।	हुई सफल यह सुन्दर कृति है ।
९९	३५	नारी के सुस्तन्य पात से,	नारी ही के स्तन्य पान से
१०७	५	बन्द किये -	श्रे बन्द किये
११४	अन्तिम	चौहद	चौदह



